प्रथम संस्करण, १९४७

कुछ शब्द

मैथिली-कवि विद्यापति और उनके काव्य के सम्बन्ध में हमारे आलोचकों में विशेष उत्साह नहीं दिखलाई पड़ता, यह आश्चर्य की बात है। विद्यापति को हिन्दी का कवि माना जाय या नहीं, इस विषय में मतभेद हो सकता है। परन्तु हिन्दी कृष्ण-काव्य के मधुर पक्ष के उद्गम तक पहुँचने के लिए हमें विद्यापति के काव्य का वैज्ञानिक विश्लेषण उपस्थित करना होगा और परवर्त्ती हिन्दी काव्य पर उसका प्रभाव आंकना होगा, यह बात निश्चित है। सूरदास के काव्य का अध्ययन करते हुए मेरा ध्यान स्वभावतः विद्यापति की ओर चला गया और यह पुस्तक उसी जिज्ञासा का फल है।

अभी तक विद्यापति पर तीन अच्छी पुस्तकें हमारे सामने आई हैं। श्री डा० जनार्दन मिश्र ने "विद्यापति" में केवल थोड़े से पदों के आधार पर कवि को रहस्यवादी सिद्ध करने की चेष्टा की है, "विद्यापति ठाकुर" में डा० उमेश मिश्र ने कवि के जीवन-वृत्त और उसके ग्रन्थों के सम्बन्ध में अन्वेषणात्मक सामग्री उपस्थित की है और "विद्यापति-काव्यालोक" में श्री नरेन्द्रनाथदास ने प्राच्य और पाश्चात्य अनेक कवियों के साथ कवि की तुलना की है। प्रस्तुत लेखक इन सभी विद्वानों का ऋण स्वीकार करता है।

मैंने अपना विषय विद्यापति के काव्य तक ही सीमित रखा है और कवि की चिंतन-धाराओं और उसके काव्य-सौन्दर्य की विस्तृत रूप से विवेचना की है। ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन बहुत कम हुआ है, और जो हुआ है उसे "परिशिष्ट" के अन्तर्गत रख दिया गया है।

पुनश्च—१६४१ में 'महाकवि विद्यापति" (लेखक स्वर्गीय पंडित शिवनन्दन ठाकुर, एम. ए.) नाम की एक आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसकी सामग्री से लाभ उठाया गया है। भाषा-सम्बन्धी प्रकरण में यह पुस्तक विशेष रूप से सहायक हुई है।

अप्रैल, १६४७
इलाहाबाद

रामरतन भटनागर

विषय-सूची

परिशिष्ट

१

विद्यापति, उनकी रचनाएँ और व्यक्तित्व

विद्यापति का निवास-स्थान मिथिलान्तर्गत विपसी (या गढ़ विपसी) ग्राम था। यह गाँव दरभंगा जिला में कमतौल स्टेशन से चार मील पर है। इसीमें उनके पूर्वज रहते चले आये थे। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने उनका वंश-वृत्त इस प्रकार दिया है[१]:—

१. "कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर" (चौथी ओरियेन्टल कान्फ्रेन्स में पढ़ा हुआ लेख, १९२६)

परन्तु डा० उमेश मिश्र इसे दूसरे ही रूप में उपस्थित करते हैं[२]।
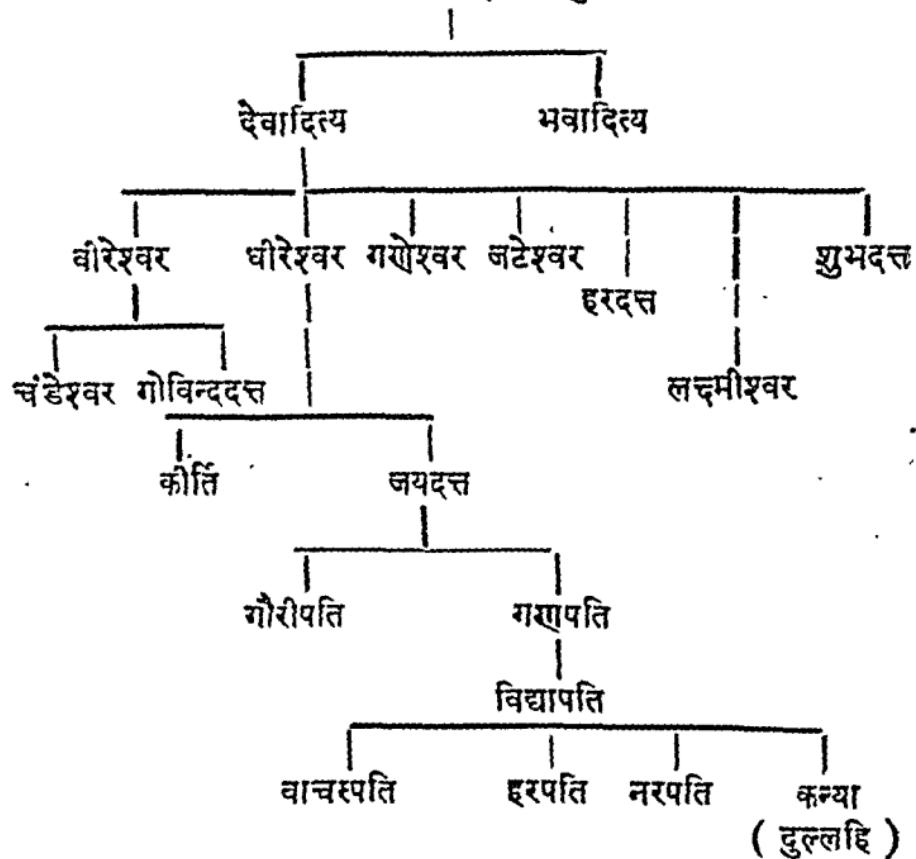
इस वंश में सरस्वती की उपासना पहले से ही चली आती थी। विद्यापति के पितामह जयदत्त के दूर के चचेरे भाई श्री ज्योतिरीश्वर कवि शेखराचार्य ने संस्कृत में पंचसायक, धूर्तसमागम और रङ्गशेखर और मैथिली में वर्णरत्नाकर नाम के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी। वीरेश्वर ठाकुर ने छन्दोगदशकर्म-पद्धति और उनके पुत्र चण्डेश्वर ने विवाह रत्नाकर, राजनीति रत्नाकर आदि सात ग्रन्थों की रचना की।

---

[२] विद्यापति ठाकुर, पृ० १२६

विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर ने 'गंगा-भक्ति-तरंगिणी' नाम की पुस्तक लिखी।

विद्यापति के जीवनवृत्त के निर्माण के लिए हमारे पास प्रामाणिक सामग्री का अभाव एकदम तो नहीं है, परन्तु यह सामग्री बहुत कम है और उसके आधार पर कवि के जीवन की केवल रूप-रेखा ही स्थिर की जा सकती है। अंतर्साक्ष्य से विद्यापति के सम्बन्ध में बहुत थोड़ी बातों का पता लगता है :

(१) उन्होंने 'कीर्तिलता' ग्रंथ महाराज कीर्तिसिंह को सुनाने के लिए लिखा।

श्रोतुर्ज्ञातुर्वदान्यस्य कीर्तिसिंह महीपतेः।
करोतु कवितुः काव्यं भव्यं विद्यापतिः कविः॥

यह सम्भवतः उनकी पहली पुस्तक है। अंतिम श्लोक में कवि ने अपने को "खेलन कवि" कहा है, इससे उनकी छोटी अवस्था ही सूचित होती है, यद्यपि पुस्तक वर्णित शृंगार और सूक्ष्म निरीक्षण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि इस समय कवि तरुण-वयस-प्राप्त हो गया था[२]।

---

[२] कीर्तिलता में कीर्तिसिंह का वंश-वृक्ष इस प्रकार है :

कामेश्वर
|
भोगीशराय (फ़ीरोज़ तुग़लक १३५२-१३८२ ई० के समकालीन)
|
गणेशराय या गणराय (असलान द्वारा ल० स० २८२ अर्थात् १३७३ ई० में मृत्यु-प्राप्त)
|
कीर्तिसिंह — वीरसिंह

पुस्तक में दोनों भाइयों के जौनपुर जाकर सुलतान इब्राहीम शाह से सहायता प्राप्त करने का उल्लेख है। इब्राहीम का राज्यकाल १४०१-१४४०

(२) 'भूपरिक्रमा', ग्रंथ महाराज देवसिंह की आज्ञा से लिखा गया। ये कीर्तिसिंह के उत्तराधिकारी और महाराज शिवसिंह के पिता थे[४]।

(३) 'कीर्तिपताका',[५] पदावली के कितने ही पदों,[६] और

ई० है। इस सहायता-प्राप्ति में कुछ समय लगा होगा, अतः यह घटना १४०१ के कुछ समय बाद १४०३-४ या ४-५ की होगी। विद्यापति ने कीर्तिलता को १४०५-८ में लिखा होगा। अवश्य ही इसकी रचना १४१० के पहले हो गई होगी क्योंकि इस सन् के बाद तो विद्यापति देवसिंह के आश्रित हो गये थे।

[४] इसका रचना-काल १४१३ ई० के पहले होगा क्योंकि यही देवसिंह की मृत्यु-तिथि है। इसका आधार विद्यापति का ही एक पद है।

३ ९ २ ४ २ ३ १
अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवइ सक समुद्र कर अगिनि सस '
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ बार वेहयप जाहु लसी
देवसिंह जू पुहुमि छड्डिय अद्धासन सुर राअ सरू

कुछ विद्वानों का मत है कि 'कर' के स्थान पर 'पुर' पाठ ठीक होगा, तब यह तिथि शक सम्वत् १३३४ (१४१३ ई०) होगी।

[५] कदाचित् यह कीर्तिलता के समय (१४०५-८) की ही रचना होगी।

[६] जनश्रुति के अनुसार शिवसिंह ने ३½ वर्ष राज किया, अतः उनकी मृत्यु १४१७ ई० में हो गई। विद्यापति पदावली के उन पदों की रचना; जिनमें शिवसिंह का नाम अथवा उपनाम है, इस समय तक हो चुकी होगी।

पुरुष-परीक्षा[७] का सम्बन्ध महाराज शिवसिंह से है। पहली पुस्तक में शिवसिंह और दिल्ली सुल्तान के युद्ध का वर्णन है जिसमें शिवसिंह विजयी हुए थे। पदावली के बहुत से दोहों के अंतिम चरण में कवि ने स्पष्ट ही राजा शिवसिंह (उपनाम रूपनारायण) और लखिमादेई को सम्बोधित किया है यद्यपि कुछ पदों में राजा शिवसिंह के साथ सुखमादेवी, मेधादेवी, मधुमतीदेवी, सोरभदेवी, रूपिणीदेवी और मोदवतीदेवी का नाम भी आया जिससे पता चलता है कि ये सब राजा शिवसिंह की पत्नियाँ थीं।

(४) २९९ लक्ष्मण संवत (तदनुसार सं० १४१८) में विद्यापति ने राजा पौरादित्य के लिए "लिखनावली" लिखी। राजा पौरादित्य बनौली राज्य के अधिपति थे[८]।

(५) ३०९ ल० सं० (वि० सं० १४२१) में राज बनौली में ही भागवत की एक प्रतिलिपि समाप्त की।

(६) महाराज पद्मसिंह की धर्मपत्नी विश्वासदेवी के लिए "शैव सर्वस्वसार[९]" और "गंगा वाक्यावली" ग्रंथ लिखे।

---

[७] पुरुष-परीक्षा की समाप्ति के पहले ही शिवसिंह की मृत्यु हो गई थी, ऐसा उसी पुस्तक से सूचित होता है, अतः इसका रचना-काल भी १४१७ के आस-पास है।

[८] लिखनावली के पत्रों में बार-बार ल० सं० २९९ (१४१७-१८ ई०) आया है, अतः यह इसी समय की रचना होगी। यह पुस्तक पुरादित्य के आश्रय में लिखी गई। अतः इससे पहले शिवसिंह की मृत्यु की बात पुष्ट हो जाती है।

[९] इस पुस्तक में शिवसिंह के दो युद्धों का उल्लेख है। एक गौड़ राज्य के साथ लड़ा गया, दूसरी गज़नी राज्य के साथ। इस पुस्तक में

(७) महाराज नरसिंहदेव की पत्नी रानी धीरमति की आज्ञा से "दानवाक्यावली"[१०] की रचना की।

(८) महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से "दुर्गा-भक्ति तरंगिणी" लिखी[११]।

(९) पदावली के पदों में कवि देवलदेवी लखनदेवी, जोगीश्वर, पद्मादेवी, देवसिंह, हासिनी देवी, महेश्वर, रेणुका-देवी, रुद्रसिंह, नसरत शाह, अर्जुन, कमलादेवी, अर्जुनराय,

---

शिवसिंह की वंशावली इस प्रकार है—

[१०] दानवाक्यावली नरसिंहदेव की स्त्री से सम्बन्धित है जिनका वंशवृत्त विभागसार में इस प्रकार दिया गया है—

भवसिंह
|
हरसिंह
|
नरसिंहदेव (उपनाम विरुददर्पनारायण)
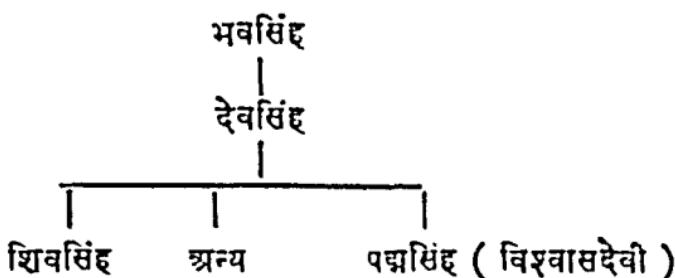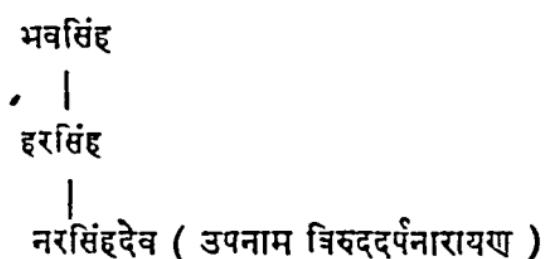
इस पुस्तक की १५३९ वि० सं० (१४८२ ई०) की लिखी एक प्रति प्राप्त है (देखिए; भंडारकर खोजरिपोर्ट १८८३-८४, पृष्ठ ३५२)

[११] दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी धीरसिंह के तीन पुत्रों धीरसिंह, चन्द्रसिंह और भैरवसिंह के आश्रय में लिखा गया बृहद् ग्रंथ है, धीरसिंह के राज्यकाल की एक निश्चित तिथि १४३८ ई० प्राप्त है।

गुणदेवी, कवि जयराम, कविराज, अभयमति, ग्यासुद्दीन, रति-धर, रूपिणीदेवी, शंकर-जयमति देवी, मलिक बहारदिन, आलम-शाह, राघवसिंह, मोदवती, सोनमती आदि विशिष्ट स्त्री-पुरुषों के नाम आये हैं जिनके लिए विद्यापति ने कविता की अथवा जिन्हें विशेष-विशेष गीतों में वे सम्बोधन कर रहे थे। अधिकांश पदों में शिवसिंह (रूपनारायण) और गरुणनारायण (देवसिंह) को सम्बोधन है, अतः पदावली के अधिकांश पद इन्हीं के समय में बने होंगे। इन पात्रों की ऐतिहासिकता कवि के जीवन के दीर्घसूत्री होने के लिए प्रमाण उपस्थित कर सकती है।

(१०) पदावली के कुछ पदों में कवि के व्यक्तिगत जीवन के उल्लेख हैं—

> १ 'दुल्लहि' तोहर कतए छथि माय
> कहुन ओ आवथु एखन नहाय
> २ "उगना" हे मोर कतए गेला

ये पद निश्चय ही कवि जीवन के अवसानकाल से सम्बन्ध रखते हैं। इसी तरह विद्यापति के इस एक पद से भी उनके जीवनवृत्त-निर्माण में सहारा लिया जाता है।

> सपन देखल हम सिवसिंह भूप
> बतिस बरस पर सामर रूप
> बहुत देखल गुरुजन प्राचीन
> अब भेलहुँ हम आयु विहीन
>
> सिमटु सिमटु निअ लोचन नीर
> ककरहु काल ने राखथि थीर
> विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव
> त्याग के करुना रसक सुभाव

वहिर्साक्ष्य की सामग्री भी अल्प है। एक ताम्रपत्र से पता चलता है कि विपसी ग्राम राजा शिवसिंह ने विद्यापति को प्रदान किया।[१२] मम्मट के काव्यप्रकाश की एक टीका की प्रतिलिपि उनके लिए की गई।[१३] जनश्रुति से सहारा लेना ठीक नहीं होगा यद्यपि चंडीदास-विद्यापति-मिलन जैसी अनेक किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। एक जनश्रुति मृत्यु-तिथि के विषय में थोड़ा प्रकाश डालती है—

विद्यापति क आयु अवसान।
कातिक धवल त्रयोदसि जान॥

ऊपर की तिथियों के अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति का रचनाकाल १४०५ के लगभग आरम्भ होकर १४३८ (या मृत्यु-पर्यन्त) चलता है। कीर्तिलता लिखते समय विद्यापति १८-२० वर्ष के तरुण अवश्य रहे होंगे, अतः उनकी जन्म-तिथि १३७५-१३७७ ई० के आस-पास होगी। नगेन्द्रनाथ गुप्त विद्यापति की मृत्यु-तिथि ३२९ ल० सं० कार्तिक शुक्लपक्ष की त्रयोदशी मानते हैं (१४४८ ई०)। हम १४३८ तक विद्यापति को रचना करते पाते हैं। इस अन्तिम बृहद् रचना ने उनका बड़ा समय लिया होगा, अतः यह तिथि असम्भव नहीं है। इस विवेचना के आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि विद्यापति का समय १३७५-१४४८ ई० है।

---

[१२] इस दान-पत्र की तिथि २९३ ल० सं० (१४१२ ई०) है।

[१३] जिस पुस्तक की प्रतिलिपि विद्यापति की आज्ञानुसार तैयार की गई उसका नाम काव्यप्रकाश-विवेक है। प्रतिलिपि की तिथि ल० सं० २९१ (१४१० ई०) है।

विद्यापति की १४ रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से ११ संस्कृत में हैं, २ अवहट्ट भाषा (या 'देसिल वयना') में, १ मैथिल में। संस्कृत की रचनाएँ भूपरिक्रमा, पुरुष-परीक्षा, लिखनावली, शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार-प्रमाणभूत, पुराण संग्रह, गंगा वाक्यावली, विभागसार, दान-वाक्यावली, दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी, गयापत्तलक और वर्षकृत्य हैं। इनमें हम कवि के पांडित्य और लौकिक अनुभव से परिचित होते हैं। शैव सर्वस्वसार, शैव सर्वस्वसार प्रमाणभूत, पुराण संग्रह, गंगावाक्यावली और दुर्गा-भक्ति-तरंगिणी एक प्रकार से धर्म साहित्य के अंतर्गत आते हैं। इनमें क्रमशः शिव, गंगा और दुर्गा की पूजाराधना की विधियों का प्रमाण सहित शास्त्रीय विधान मिलता है। यद्यपि ये पुस्तकें 'आज्ञानुसार' लिखी गईं; परन्तु यह स्पष्ट है कि कवि विद्यापति अपने पूर्वजों की भाँति मध्ययुग की संस्कृति में हिन्दुत्व को स्थायीत्व दे रहे थे। मुसलमानों के आक्रमण के बाद देश भर में प्राचीन आचार-विचारों को कड़ा करने और धर्म-कृत्यों को विधि-विधानों में बाँधने की जो प्रवृत्ति चली थी, उसमें यथाशक्ति विद्यापति ने भी योग दिया। इन उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त दानवाक्यावली और वर्षकृत्य भी इसी प्रवृत्ति को पुष्ट करते हैं। पहले ग्रन्थ में, दान कितने प्रकार के होते हैं, किस दान का विधान क्या है, उससे क्या लाभ है, इस प्रकार की विवेचना है, दूसरे ग्रन्थ में वर्ष भर के शुभ कर्मों (पूजा, व्रत, दान आदि) का विधान है। गयापत्तलक में गया में किये जाने वाले श्राद्ध कृत्यों का विधि-विधान है। विभाग-सार स्मृति ग्रन्थ है जिसमें जायदाद का बँटवारा किस प्रकार हो, इस विषय का विस्तृत निरूपण है। 'लिखनावली' अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं। वह नमूने के पत्रों का संग्रह है। इस प्रकार के ग्रन्थ से विद्यापति के व्यवहार-ज्ञान पर ही प्रकाश पड़ता है।

जिन दो पुस्तकों को हम 'साहित्यिक' पुस्तकों की श्रेणी में रख सकते हैं, वे हैं भूपरिक्रमा और पुरुष-परीक्षा। इनमें हमें विद्यापति के कथाकार-रूप का भी परिचय होता है। दोनों ग्रन्थों में अनेक कथायें हैं जिनकी मूल भावना नीतिपरकता है। इनमें पुरुष-परीक्षा विशेष रूप से प्रशंसित हुई है। जान पड़ता है, विद्यापति ने पदों में जिस 'सुपुरुष' का बार-बार उल्लेख किया उसकी मूल भावना इसी ग्रन्थ के लिखते समय उत्पन्न हुई थी। 'पुरुष' का इतना वैज्ञानिक और सुन्दर वर्गीकरण किसी अन्य भाषा में नहीं मिलेगा। संक्षेप में, संस्कृत की इन रचनाओं में विद्यापति धर्म-संस्थापक, स्मृतिकार, नीतिज्ञ, लोकविद् पंडित के रूप में उपस्थित हुए हैं।

अवहट्ट की पुस्तकों—कीर्तिलता और कीर्तिपताका—में हमें विद्यापति का दूसरा रूप मिलता है। दोनों वीर-काव्य की श्रेणी में आ सकते हैं। इनमें क्रमशः कीर्तिसिंह और शिवसिंह की वीरता का वर्णन है। इनका मूल्य साहित्यिक भी है, ऐतिहासिक भी। वस्तुतः विद्यापति की अन्य रचनाओं (जैसे दानवाक्यावली और लिखनावली) में भी ऐसी अनेक बातें मिलती हैं जिनसे मध्ययुग की संस्कृति और सभ्यता पर महत्त्व-पूर्ण प्रकाश मिलता है। इसका कारण यह है कि विद्यापति का लोक-ज्ञान अत्यन्त विस्तृत था और वह हिन्दू संस्कृति में ओत-प्रोत थे।

मैथिली की रचनाएँ पदावली के रूप में संग्रहीत हैं। ये छोटे-बड़े गेय पद हैं। इनका विषय शृंगार है। यद्यपि कितने ही पद ऐसे भी हैं जिनमें कवि की भक्ति, विरक्ति, आत्म-ग्लानि जैसी भावनाएँ प्रस्फुटित हुई हैं। कवि ने राधा-कृष्ण को आलम्बन रूप में स्वीकार किया है और उन्हें आधार बनाकर प्रेम-खण्ड-काव्य की ही सृष्टि कर डाली है। विद्यापति की कीर्ति

का सहारा इन्हीं पदों पर है। यही प्रस्तुत आलोचना का विषय है। इनमें विद्यापति एक साथ शृंगारिक कवि, भक्त, नीतिज्ञ और काव्य-पंडित के रूप में हमारे सामने आते हैं।

विद्यापति का व्यक्तित्व कुछ ऐसा है कि साधारण बुद्धि की पकड़ में नहीं आता। इसका कारण यह है कि उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उन्होंने अपने समय की सारी प्रवृत्तियों का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व किया। वह प्रधानतया रसिक और पंडित थे, परन्तु इन दो प्रवृत्तियों में से कौन-सी प्रधान थी, यह कहना कठिन है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ उनकी पहली रचना (कीर्तिलता) में ही मिल जाती हैं जहाँ तरुण कवि जौनपुर की वेश्याओं का वर्णन करता है—

एक दिसँ पसरु पसार रूप जोव्वण गुणे आगरि।
वानिनि वीथी मांझि वइस सए सहसहि नागरि॥
सम्भाषण किछु वेश्राज कइ तासओ कहिनी ववय कइ।
विक्कणइ वेसाहइ अधु सुखे डिठि कुतूहल लाभ रइ॥

सव्वउँ केरा रिब वउन
तरुणी हेरहि वंक
चोरी पेम पिआरिओ
अपने दोष सशंक

(सब दिशाओं में फैलाव फैला था। रूपवती, युवती, नागरी, गुणागरी वानिनियाँ गलियों में सैकड़ों सखियों के साथ बैठी थीं। सब कोई कुछ न कुछ बहाना करके उनसे बातचीत करता था, कहानी कहता था। सुख से बेचता-खरीदता था, दृष्टि-कुतूहल-लाभ में रह जाता था। सब ही की सीधी-सादी आँखें इन युवतियों को तिरछी दिखाई देती थीं—चोरी से प्रेम करने वाली प्रेयसियाँ अपने ही दोष से सशंक रहती थीं।)

राजपथक सन्निधान सञ्चरन्ते अनेक देखिअ वेश्यान्हि करो निवास, जन्हि के निर्माणे विश्वकर्महुँ भेल बड़ प्रआस। अनेक भैतिओ कहओं का जन्हि केश धूप धूम करो रेखा ध्रुवहु ऊँपर जा गाहू गाहू अइसोन ओ सङ्गत करे काजरे चान्द कलंक। लाज किसिम कपट तारुन। धन निमित्ते घर पेम, लोभे विनिअ, सौभागे कामन। बिनु स्वामी सिन्दूर परा परिचय अपामन॥ जं गुणमन्ता अलदना गौरव लहइ भुअंग। वेसा धुअ वसइ धुत्तह सअ अनंग॥ तान्हि वेश्यान्हि करो मुख सार भएउन्ते अलक तिलका पत्रावली लपदन्ते, दिव्याम्बर पिन्हन्ते, उभारि उभारि केशपाश बन्धन्ते, सखिजन प्रेरन्ते, हसि हेरन्ते, सआनी, विअष्खणी परिहास पेसणी सुन्दरी सार्थ जबे देखिअ तबे मन कर तेसरा लागि तीनू उपेष्खिअ। तान्हि केश कुसुम कस, जनि मान्धजनक लज्जवलंपित मुख चन्द्र चन्द्रिका करी अधओगति देखि अन्धकार हस। वअनाञ्चल सञ्चारे भ्रूलता भङ्ग, जनि कज्जल कल्लोलिनी करी वीची विवर्त बड़ी बेड़ी शफरी तरङ्ग। अति सूक्ष्म सिन्दूर रेखा निन्दन्ते पाप, जनि पञ्चशर करो पहिल प्रताप। दोखे हीनि, माझ खीनि। रसिके आनलि जूआं जोति, पयोधर के भरे भागए चढ़ानेवक रीति तीय भागे तीनु भुवन साह। सबरें बाज राअन्हि छाज। काहु होअ अइसनो आस कइहो लागत आचर बताउ।

तान्हि करी कुटिल कटाक्ष छटा कन्दर्प शर श्रेणी जओ नागरिन्ह काँ मन गाउ। गो बोलि गयारन्हि छाउ।

(राजपथ के निकट चलने पर वेश्याओं के अनेक घर दिखाई पड़ते थे जिनके बनाने में विश्वकर्मा को भी बड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा। और विचित्रता क्या वर्णन करूँ? उन (वेश्याओं) की धूप-धूम लेखारूपी केश-छटा ध्रुव के भी ऊपर जाती थी। कोई-कोई ऐसी भी अर्थ-सङ्गति करते थे कि उनके काजल के कारण चन्द्रमा में कलंक है। उनकी लाज बनावटी, जवानी छल की। धन के लिए प्रेम करें, सोहाग को

कामना। स्वामी के बिना सिन्दूर का खूब अनुराग। कितना अपावन!

जहाँ गुणी पुरुष कुछ नहीं पाते, जार पुरुष गौरव प्राप्त करते हैं, निश्चय ही वेश्या के घर में कामदेव धूर्त के रूप में वास करते हैं। वे वेश्याएँ जब मुख का मण्डन करतीं, केश रचना करतीं, तिलक और पत्रावली कतर कर लगातीं, सुन्दर दिव्य वस्त्र पहनतीं, केश उठा-उठाकर बाँधतीं, सखियों को छेड़तीं, हंस कर देखतीं, तब सयानी, लोनी, पातुरी, पतोहरे (पुत्र-वधु), युवती, चञ्चल नवेली, चतुर हँसी-ठट्टा में कुशल सुन्दरीगण को देखकर मन में ऐसा होता था कि तीसरे (पुरुषार्थ अर्थात् काम) के लिए और तीनों (धर्म, अर्थ, मोक्ष) को छोड़ दें।

उनके केशों में फूल लगे थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था कि माननीय लोगों के लज्जानत मुखचन्द्र की चन्द्रिका की अधोगति देख कर अंधकार हँस रहा हो। नयनाञ्चल के संचार होने पर भ्रूलता में भंग होता था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो कज्जल नदी लहरों की भँवर में बड़ी-बड़ी मछलियाँ डोलती हों। पाप की निन्दा करने वाली सिन्दूर की रेखा बड़ी सूक्ष्म थी, मानो कामदेव का प्रथम प्रताप हो। कटि दोषहीन, क्षीण मध्य मानो रसिकों से जुआ में जीत कर लाई गई हो और पयोधर के भार से भागना चाहती हो। नेत्र अपने तीन (श्वेत, कृष्ण, रक्त) भागों से अपने को त्रिलोकी का शासक समझता था। राजों का साज अच्छी तरह बजता था। किसी किसी के मन में ऐसा होता था कि किस प्रकार अञ्चल की हवा लगे।

उनकी कुटिल कटाक्ष छटा ही कामदेव की बाणों की श्रेणी थी जो दुहाई बोलने पर गँवारों को छोड़ कर सब नागरिकों के मन में गड़ जाती थी।

अपनी इस प्रारम्भिक रचना में भी कवि काव्यशास्त्र के पंडित, कलाकार और रसिक कवि के रूप में प्रकट हुआ है। विद्यापति के व्यक्तित्व के इस रूप के दर्शन हमें अंत तक मिलते हैं। भक्ति-पदों में उन्होंने रसिकता, कला-प्रदर्शन और पाण्डित्य का पीछा नहीं छोड़ा है। परन्तु उनके व्यक्तित्व का एक दूसरा पक्ष भी है। वे संसार के दुख-सुख के विचक्षण निरीक्षक हैं और अपने उथल-पुथल के युग में हिन्दू संस्कृति की नदी को नियमित प्रवाह देकर चिरजीवी करना चाहते हैं। भागवत की प्रतिलिपि करने की बात से यह स्पष्ट है कि उन पर वैष्णव धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव पड़ चुका था, परन्तु उस समय तक यह आन्दोलन अत्यन्त प्रारम्भिक रूप में था, और विद्यापति शैव भक्तों के बीच में रह रहे थे एवं स्वयम् शैव थे। अतः वैष्णवों के कृष्ण के सच्चे रूप से परिचित होते हुए तथा उनके प्रति श्रद्धा रखते हुए विद्यापति शृंगारशास्त्र के आधार पर कृष्ण-कथा का एक विचित्र महल उठा सके। ऐसा करते समय उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने युग की प्रवृत्ति को समझ लिया था। भले ही पदावली रचते समय विद्यापति में वैसी धर्म-भावना न रही हो जैसी बाद के वैष्णवों ने उनके पदों में पाई, परन्तु यह तो अस्वीकार ही नहीं किया जा सकता कि उनमें इतनी भावुकता, तन्मयता और अतेन्द्रिय आनन्द उत्पन्न करने की शक्ति थी कि वैष्णव-भक्त और साधक उन्हें आध्यात्मिक संकेत के रूप में ग्रहण कर सके। पांडित्य के साथ इतनी गहरी भावुकता और विषय में डूब कर इतनी तन्मयता के साथ लेखनी चलाने की योग्यता विरले ही कवियों को प्राप्त होती है और यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व पंडितों और रसिक को एक ही साथ मोह सकता है।

इसी आकर्षण के कारण विद्यापति के पदों को बंगाल के वैष्णव गीत संग्रहों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। चतुर्थ शताब्दी पहले बंगाली उन्हें अपने ही देश का कवि मानते थे, परन्तु बाबू राजकृष्ण मुकुर्जी और डा० ग्रियर्सन की खोजों ने इतर प्रांत निवासी सिद्ध किया[१४]। फिर भी विद्यापति के पद बङ्गाल में इतने प्रचलित हैं और संग्रह आदि के रूप में उन्होंने वहाँ के साहित्य पर इतना प्रभाव डाला है कि बंगाली इतिहास को उन्हें अपने ग्रंथ में स्थान देना ह पड़ता है।

विद्यापति के समय में मिथिला ज्ञान का केन्द्र था। इसलिए बंगाल में इसी धारा से विद्यापति के पदों का आगम हुआ। दूसरे, मैथिल कवि गोविन्ददास के प्रति भी ऐसा ही हुआ परन्तु बंगाली उन्हें अब भी बिहारी नहीं मानते[१५]। बंगाल और मिथिला में प्रचलित विद्यापति के पदों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बंगाल में विद्यापति के कितने ही ऐसे पद प्रचलित हैं जिन्हें देशवासी भूल गये हैं। उदाहरण के लिए "जनम अवधि हम रूप नेहारिनु" बिहार में प्रचलित नहीं। यह सुन्दर गीत बंगाल में अत्यन्त लोकप्रिय है। जनश्रुति है कि १६वीं शताब्दी में जैसोर के राजा प्रतापादित्य के चाचा बसन्तराय ने विद्यापति के मैथिली पदों को बंगलारूप दिया।

विद्यापति की प्रसिद्धि पर विचार करने से यह प्रकट होता है कि उसका मूल कारण उनका संस्कृत का पांडित्य था। अपने समय में वे अपने संस्कृत ग्रन्थों के लिए ही अधिक प्रसिद्ध हुए

---

[१४] History of Bengali Language and Literature : Dinesh Chandra Sen, P. 135

[१५] वही पृष्ठ १३६

और उन्हीं के बल पर उन्हें "अभिनव जयदेव" आदि उपाधियाँ मिलीं। परन्तु विद्यापति का हृदय जितना मैथिली पदों में प्रस्फुटित हुआ है, वैसा अन्य स्थान पर नहीं। "शब्दयोजना, कल्पना की उड़ान, उपमा और उत्प्रेक्षा की नवीनता और उत्कृष्टता में अन्य भाषाकवियों को विद्यापति बहुत पीछे छोड़ जाते हैं, प्रकृति की गोद में पले चण्डीदास की भी उनसे कोई समता नहीं हो सकती।"[१६]

---

[१६] देखिए, दिनेशचन्द्र सेन।

२

विद्यापति का पदावली-साहित्य

विद्यापति के मैथिल गीतों का संग्रह "पदावली" नाम से प्रसिद्ध है। यही उनकी कीर्ति का आधार है।

विद्यापति के पदों की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय श्री डा० ग्रियर्सन को मिलना चाहिये जिन्होंने १८८२ ई० में "मैथिलक्रस्टोमेथी" नाम का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें विद्यापति के ७२ गीतों (पदों) को अनुवाद सहित पाठकों के सामने रक्खा गया। इस प्रकाशन के बाद बङ्गाल के साहित्यिकों और आलोचकों का ध्यान विद्यापति की ओर गया और उन्होंने उनके पद संग्रह करने एवं उन्हें बंगाली रचना सिद्ध करने की चेष्टा आरम्भ की। श्री त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य, एम्० ए, बी० एल०, श्री रामगति न्यायरत्न, बाबू कैलाशचन्द्र घोष प्रभृति सज्जनों ने विद्यापति को वंगदेशीय कवि सिद्ध करने के लिये बड़ा परिश्रम किया, साथ ही डा० ग्रियर्सन, श्री रमेशचन्द्र दत्त और कितने ही दूसरे अन्वेषकों ने उन्हें मैथिल माना। इस प्रकार विद्यापति को लेकर एक वितंडावाद ही उठ खड़ा हुआ। परन्तु इसका फल अच्छा हुआ। विद्यापति के पदों के कितने ही संग्रह प्रकाशित हुए और अनेक विद्वानों ने ढूँढ़-ढूँढ़ कर इन पदों को प्रकाश में लाने की चेष्टा की। श्री अक्षयकुमार सरकार के प्रामाणिक संग्रह में पहली बार विद्यापति के १६४ पद संग्रहित हुए। इस संग्रह के अनन्तर जो

दूसरे संग्रह प्रकाशित हुए, उनमें पदों की संख्या बराबर बढ़ती रही।

हिन्दी में विद्यापति के पदों के तीन संग्रह प्रकाशित हुए हैं। "मैथिल कोकिल विद्यापति" (१९०८) में कवि के ६३३ पद संग्रहीत हैं, रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी और शिवपूजन सहाय के संग्रहों में जो पद हैं उनकी सम्मिलित संख्या इसका तृतीयांश होगी। इन तीनों संग्रहों में कितने ही ऐसे पद हैं जो समान रूप से सब में मिलते हैं। इन संग्रहों के अतिरिक्त अन्य संग्रह-ग्रन्थों में भी विद्यापति के पद हैं। अतः आवश्यक यह है कि प्रामाणिक पदावली का निर्णय किया जाय। ऐसी आधुनिक पुस्तकों के संग्रह में सबसे पहली Maithila chrestomathy है जिसके ग्रन्थकर्ता डा० जी० ए० ग्रियर्सन (प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान) हैं। "श्री मैथिली" (स० बाबू उदितनारायण) और "मिथिला" (विद्यापति प्रेस, लहरिया सराय) "मिथिलामिहिर" जैसे पत्रों में भी कुछ पद प्रकाशित हुए हैं। इन सब का एकत्रीकरण एवं वैज्ञानिक विवेचन आवश्यक है। पाठभेद के साथ विद्यापति के कुछ पदों का संग्रह केवल एक स्थान पर, 'पद कल्पतरु' (स्वर्गीय सतीशचन्द्र) में मिलता है, परन्तु अभी बहुसंख्यक पदों की तुलनात्मक समीक्षा नहीं हो सकी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अब तक के संग्रहों में सबसे बड़ा संग्रह गुप्त का संग्रह है। इस संग्रह के कई आधार हैं—

(१) तालपत्र की पोथी जिसे गुप्तजी विद्यापति के पौत्र के हाथ की लिखी हुई बताते हैं। इसमें २५० के लगभग पद ऐसे मिले जो अन्य स्थानों पर प्राप्त नहीं हो सके थे।

(२) नैपाल की प्रति। इसमें से ३०० पद लिये गये हैं।

(३) पद कल्पतरु के ३५० के लगभग पद आये हैं।

(४) "कीर्तनानन्द" और "राग-तरंगिणी" में कुछ थोड़े से पद प्राप्त हुये हैं।

इस प्रकार गुप्तजी को जो पद मिल सके हैं उनकी संख्या १००० से कहीं ऊपर चली जाती है, परन्तु उन्होंने किसी कारण-वश केवल ६३५ पद ही अपने संग्रह में रक्खे हैं। तालपत्र की पोथी कहाँ तक प्रामाणिक सामग्री उपस्थित करती है इस विषय में अन्य विद्वानों का श्री गुप्तजी से मतभेद है। उनके संदेह के दो कारण हैं। एक, इसमें उमापति के पारिजात-हरण का भी एक गीत विद्यापति के नाम से मिलता है, दूसरे, इसके ३० गीतों में "भनिता" नहीं है। छन्द-शुद्धि की दृष्टि से भी बहुत से गीत नीची श्रेणी के हैं। नेपाली प्रति के लगभग आधे गीतों में "भनिता" नहीं है, बहुत से गीतों में उसका रूप ('भनइ विद्यापति' इत्यादि) संदिग्ध है। रागतरंगिनी के लेखक लोचनकवि का समय १८वीं शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश है, अतः यह इतने बाद का संग्रह है कि इसकी सामग्री का हम "प्रामाणिक" नहीं कह सकते, कम-से-कम आँख मूँदकर तो स्वीकार नहीं कर सकते। इस संग्रह में कितने ही पद भनिता-रहित हैं। उन्हें हम विद्यापति की रचना किस आधार पर कहें? इन बातों के अतिरिक्त गुप्तजी ने अनेक भिन्न भनिताओं को विद्यापति की भनिता मान लिया है जैसे 'शेखर', 'कवि शेखर', 'कवि वल्लभ', 'कविरंजन', 'कविकठंहार', 'अभिनव जयदेव', 'जयदेव' 'सरस कवि', 'लखिमनाथ', 'पंचानन', 'कविवर शेखर' आदि। विद्यापति इतने सब उपनामों से लिखते थे, यह कहना कठिन है।[1] फिर रुद्रधर, चम्पति, भूपति आदि तो किसी भी प्रकार

---

[1] शिवसिंह के दान-पत्र में विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' और 'महाराज पंडित' कहा गया है। कीर्तिलता में कवि अपने को 'खेलन'

कवि के उपनाम नहीं हो सकते। वास्तव में इस बृहद् संग्रह का रूप अत्यन्त संदिग्ध है। बंगाल और मिथिला के अनेक कवियों ने विद्यापति के अनुकरण में पद लिखे हैं, उनमें से कितने ही प्रमादवश विद्यापति के नाम पर प्रचलित हो गये हैं।

कवि कहता है। "अभिनव जयदेव" वाले पद विद्यापति की रचना माने जा सकते हैं, "राजपंडित" भनिता के पदों (न० गु० संस्करण पद सं० ५०६) को भी हम प्रामाणिक स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु अन्य भनिताओं के पदों को निश्चित रूप से विद्यापति की रचना कैसे माना जाय?

३

पदावली की राधा-कृष्ण कथा

भूमिका

विद्यापति ने राधा-कृष्ण प्रसंग को नये दृष्टिकोण से देखा है। इस दृष्टिकोण का आधार काव्य-शास्त्र और राधा-कृष्ण में नायक-नायिका की कल्पना है।

कथा-प्रसंग राधा की वयः-सन्धि से आरम्भ होता है। राधा धीरे-धीरे तरुणी हो जाती है। कृष्ण तरुण हैं ही। विद्यापति ने राधा को कृष्ण से छोटा चित्रित किया है, कदाचित् इसके मूल में मिथिला की बाल-विवाह की प्रथा हो, या कवि ने वयः-सन्धि के कल्पना के लिए किसी योजना की हो। इसी समय दौत कर्म आरम्भ होता है। दूतियाँ राधा से कृष्ण की चर्चा चलाती हैं और कृष्ण से राधा की। दोनों एक दूसरे को देखते हैं। यह प्रथम दर्शन है जिससे पूर्व राग का जन्म होता है। यह परस्पर प्रथम संदर्शन दूतियों की योजना से सम्भव हुआ है।

इसके पश्चात् राधा और कृष्ण का पूर्व राग है। इसमें कवि ने दूती द्वारा उभय पक्ष के सौन्दर्य का कथन कराया है। अनेक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के भीतर से कवि ने राधा-कृष्ण का जो चित्र उपस्थित किया है वह अपूर्व है, जयदेव में हमें इसके दर्शन नहीं होते। इसके बाद दूती राधा को अभिसार के लिए तैयार करती है, और कृष्ण को प्रबोध करती है। राधा-कृष्ण का मिलन होता है। यह प्रथम मिलन है। इसमें वासना और दैहिक संसर्ग की लालसा अतंर्हित है।

भी नहीं है। उनका स्थान अनेक गोपियों ने लिया है और उसमें कृष्ण और गोपियों की भेंट महाभारत के बाद ही होती है। मूल कथा में भ्रमर-गीत और उद्धव का प्रसङ्ग है। विद्यापति में ऊधो का उल्लेख अवश्य आया है परन्तु उन्हें न व्रज भेजा गया है, न उनके द्वारा ज्ञानोपदेश की चर्चा है। विद्यापति का एक पद है—

> ऊधव ! कव हमरों व्रज जाइव
> कव पितु नन्द यशोमति कोरे बसि फिरि माखन खाइव।

स्पष्ट है कि विद्यापति कृष्ण के सत्य-रूप से परिचित हैं। उन्होंने सारे प्रसङ्ग में उन्हें नायक चित्रित किया है और अपने शृङ्गार काव्य का आधार बनाया है परन्तु वह यह भी जानते हैं कि यह अलौकिक का शृङ्गार है। यह बात सत्य है कि उनकी कविता में यह इंगित लोप हो जाता है, परन्तु राधा-कृष्ण केलि की अलौकिकता से वे परिचित अवश्य हैं। इसी से हम कहते हैं कि उनके नायक-नायिका हमारे लोक के होते हुए भी हमारे नहीं हैं। प्रथम मिलन के अवसर पर कवि कह उठता है—

> एक गह चिकुर दोसर गह गीम।
> तिसर चिबुक चउठे कुच सीम॥
> निवि बँध फोयक नहिं अवकास।
> पानी पचमक बाढ़ल आस॥

(इस पद में कवि ने माधव को चतुर्भुज वर्णन किया है।) परन्तु यह सब जानते-बूझते हुए कवि मौलिकता का आश्रय लेते हुए कृष्ण-कथा को एक अभिनव रूप देता है। साधारण पाठक विद्यापति के काव्य को पूर्वरंग, मिलन, मान, दूती-प्रसंग, अभिसार, विरह और पुनर्मिलन शीर्षकों में बँटा हुआ देख

कर यह समझ लेता है कि विद्यापति शृङ्गार शास्त्र की परिपाटी पर लिख रहे हैं। बात सच है। परन्तु इतना और बढ़ा देना पड़ेगा कि विद्यापति का काव्य पूर्णतः मुक्तक नहीं है, उन्होंने इन विभिन्न शीर्षकों से बनते हुए कथानक को एक छोटे खण्ड काव्य का रूप दे दिया है। यही उनकी मौलिकता है। इसे ही उनका पांडित्य समझिए। यही कारण है कि बाद के कवियों के लिए राधा-कृष्ण लीला का वही रूप निश्चित हो गया जो रीति-आचार्यों ने प्रेम के विकास के लिए स्थिर किया था। वही पूर्व रङ्ग, मिलन, मान, दूती-प्रसङ्ग, अभिसार, विरह और पुनर्मिलन, अलौकिक नायक-नायिका के साथ अलौकिक रहस्यमय धर्म-भूमि पर उतर आए और आध्यात्मिक साधना का विषय बने। हिन्दी में विद्यापति की यह परिपाटी ग्रहीत नहीं हुई, परन्तु बङ्गाल के कवियों ने १८वीं शताब्दी तक कृष्ण-कथा को इसी रूप में अपनाया।

कृष्ण

विद्यापति के कृष्ण जयदेव के कृष्ण से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं। वे धीर ललित दक्षिण नायक के रूप में चित्रित किए गये हैं, वाम नायक केवल उन्हीं कुछ पदों में हैं जिनमें राधा को खंडिता बनाया है (जैसे "लोचन अरुण बुझल बड़ भेद" वाले पद में)। कवि ने स्वतंत्र रूप से उनका चित्रण नहीं किया है, राधा के चित्रण के साथ उनका भी चित्रण हो जाता है। वे व्यस्क रूप में हमारे सामने आते हैं।

अभिनव जलधर सुन्दर देह
पीत बसन जनि दामिनि रेह
सामर झामर कुटिलहि केस
काजर साजल मदन सुवेस

स्नान के समय राधा को देखकर कृष्ण के मन में प्रेम का उदय होता है। विद्यापति ने कृष्ण के पूर्व राग का सुन्दर वर्णन किया है, जयदेव के काव्य में इसका प्रसंग ही नहीं आया।

१. नन्दक नन्दन कदमक तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाय
समय संकेत निकेतनि बइसल बेरि बेरि बोलि पठाय
सामरी तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि
जमुनक तीर उपवन उदबेगल फिरि फिरि ततहिं निहारि
गोरस बेचन अबइत जाइत जनि जनि पुछे बन मारि

२. जबहिं दुहुँक दिठि बिछुरलि दुहु मन दुख लागु
दुहुक आध दिय बूझल मनमथ आँकुर माँगु

इसके अनन्तर हम उन्हें विदग्ध, चञ्चल नायक के रूप में देखते हैं—

एक दिन हेरि हरि हँसि हँसि जाय
अरु दिन नाम धरि मुरलि बजाय
आजु अति नियरे करल परिहास
कए जानिए गोकुल के कर विलास
सजनी हे नागर सामराज
मुल बिनु पर धन माँगे ब्याज
परिचय नहिं देखी आन काब
ना करे सम्भ्रम ना करे लाज

कुछ पदों में कृष्ण के विरह का चित्रण भी हो गया है—

आजु हम पेखल कालिन्दि कूल
तो बिनु माधव लोटय धूल
कत कत रमनि मनहिं नहिं माने
किय विषदाह समय जल दाने
मदन भुजङ्गम दंसल कान
त्रिनहिं अमिय रस कि करब आन

परन्तु ऐसे स्थल कम हैं। अधिक विरहांकन राधा का ही हुआ है।

इन प्रसंगों के अनन्तर मान-मोचन एवं मिलन के अवसर पर हमें कृष्ण के उस स्वरूप के दर्शन होते हैं जिसकी अवतारणा पहली बार जयदेव ने की थी और विद्यापति के काव्य ने जिसकी पुष्टि की। कृष्ण विलास-केलि-चतुर रति विशारद (देखिए राधा की उक्ति,-'रति सुविशारद तुहु राखो मान। बढ़िले यौवन तोहे देवों दान) नायक मात्र रह गये हैं—जिनका अन्यतम लक्ष्य निवि-बंध-मोचन है।

राधा

विद्यापति राधा को वयः-संधि की अवस्था में हमारे सामने लाते हैं। यह उनकी मौलिक कल्पना है। विद्यापति से पूर्व जयदेव राधा को साहित्य में अवतीर्ण कर चुके थे। परन्तु जयदेव की राधा वयप्राप्त, यौवन-प्राप्त, केलि-चतुरा नायिका है जो बल-छल से कृष्ण को प्राप्त करना चाहती है। विद्यापति ने राधा को यौवन के पथ पर सद्यःआरूढ़ चित्रित करके एक अभिनव सृष्टि की है जो सारे साहित्य में नवीन है। यह वह अवस्था है जब राधा ऐसी आयु में है कि हम उसे बालिका नहीं कह सकते परन्तु तरुणी कहते हुए भी हिचकेंगे। यह भीतरी और बाहरी संघर्ष की अवस्था है। बाहर शैशव-यौवन में शरीर-राज्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष हो रहा है। भीतर वह संघर्ष है जिसका रूप व्यापक है। एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को विद्यापति हमारे सामने लाते हैं जब यौवन के उदय के साथ मनोभावों में उथल-पुथल होने लगती है।

राधा पहचानी नहीं जाती, कि बालिका है या यौवन को प्राप्त हो गई है। पहले चरण चपल थे, दौड़ी-दौड़ी फिरती थी,

बाला शैशव तारुन भेंट।
लखइ न पारिय जेठ-कनेठ॥
विद्यापति कह सुन वर कान।
तरुनिय शैशव चिन्हइ न जान॥

(कभी नेत्रों से कटाक्ष करती है, कभी धूल में खेलने लगती है कभी-कभी हँसने से दाँत निकल पड़ते हैं अर्थात् बालिका की भाँति मुक्त अट्टहास करती है, कभी-कभी हँसी आने पर मुंह पर अंचल देकर उसे छिपा लेती है। कभी तेज चलते-चलते चौंक कर मन्द चलने लगती है। जान पड़ता है कामदेव पहला पाठ पढ़ा रहा है। छोटे-छोटे स्तनों को देख कर कभी अंचल देती है, कभी भूल जाती है। बाला के शरीर में शैशव और तारुण्य की भेंट हो रही है। जान नहीं पड़ता कौन बड़ा है, कौन छोटा। हे कृष्ण, यह शैशवावस्था है या यौवनावस्था यह पहचान नहीं होती।)

परन्तु वयः-सन्धि का स्थल स्वभाव अथवा व्यवहार ही नहीं, अंग भी है। अतः विद्यापति ने उस ओर भी ध्यान दिया है। कुच-स्थान पर लालिमा पड़ गई[१०]। पहले अंकुर की तरह उठ आए[११] फिर बेर, फिर नारंगी की भाँति[१२]। कटि प्रतिदिन क्षीण होने लगी। नितम्ब को गुरुवा मिलने लगी[१३]।

---

[१०] उरज-उदय-थल लालिम देल

[११] किछु किछु उतपति अंकुर भेल

[१२] पहिल बदरि कुच पुन नवरंग
दिन दिन पयोधर भै गेल पीन
सो पुन भै गेल बीजक मोर।
अब कुच बाढ़ल श्री फल जोर

[१३] कटि के गौरव पावल नितम्ब
बाढ़ल नितम्ब माझ भेल छीन

बाला शैशव तारुन भेंट।
लखइ न पारिय जेठ-कनेठ॥
विद्यापति कह सुन वर कान।
तरुनिय शैशव चिन्हई न जान॥

(कभी नेत्रों से कटाक्ष करती है, कभी धूल में खेलने लगती है कभी-कभी हँसने से दाँत निकल पड़ते हैं अर्थात् बालिका की भाँति मुक्त अट्टहास करती है, कभी-कभी हँसी आने पर मुंह पर अंचल देकर उसे छिपा लेती है। कभी तेज चलते-चलते चौंक कर मन्द चलने लगती है। जान पड़ता है कामदेव पहला पाठ पढ़ा रहा है। छोटे-छोटे स्तनों को देख कर कभी अंचल देती है, कभी भूल जाती है। बाला के शरीर में शैशव और तारुण्य की भेंट हो रही है। जान नहीं पड़ता कौन बड़ा है, कौन छोटा। हे कृष्ण, यह शैशवावस्था है या यौवनावस्था यह पहचान नहीं होती।)

परन्तु वयः-सन्धि का स्थल स्वभाव अथवा व्यवहार ही नहीं, अंग भी है। अतः विद्यापति ने उस ओर भी ध्यान दिया है। कुच-स्थान पर लालिमा पड़ गई[10]। पहले अंकुर की तरह उठ आए[11] फिर बेर, फिर नारंगी की भाँति[12]। कटि प्रतिदिन क्षीण होने लगी। नितम्ब को गुरुता मिलने लगी[13]।

---

[10] उरज-उदय-थल लालिम देल
[11] किछु किछु उतपति अंकुर भेल
[12] पहिल बदरि कुच पुन नवरंग
दिन दिन पयोधर भै गेल पीन
सो पुन भे गैल बीजक मोर।
अब कुच बाढ़ल श्री फल जोर
[13] कटि के गौरव पावल नितम्ब
बाढ़ल नितम्ब माझ भेल छीन

इसके उपरांत वह अवस्था आती है जब राधा लगभग यौवन-प्राप्त होती है, परन्तु शैशव ने अभी भी उसे पूरा नहीं छोड़ा। यौवनागम को वह अत्यन्त आश्चर्य से देखती है, अपनी नई परिस्थिति को समझ नहीं पाती। धीरे-धीरे शैशव ने उसकी देह छोड़ दी। कवि इस अवस्था का वर्णन करता है—

शैशव छोड़ल शशि मुख देह।
खत देइ ते जल त्रिवलि ति रेह॥
अब भेल यौवन, बङ्किम दीठ।
उपजल लाज हास भेल मीठ।

(शैशव ने उस सुंदरी की देह को छोड़ दिया है। उसने त्रिवली के रास्ते से उस सुंदरी की देह को छोड़ा है। पहले त्रिवली नहीं थी, अब यौवनागम पर त्रिवली दिखलाई पड़ती है, इससे कवि इस प्रकार की कल्पना करता है। अब वह युवती हो गई। चितवन में बाँकपन आ गया। लाज करने लगी। मुक्त अट्टहास बंद हो गया, स्मित हास्य रह गया।) अब यौवन निश्चित रूप से आ गया—

आयल यौवन शैशव गेल।
चरण चपलता लोचन लेल॥
दुहु लोचन कर दूतक काज।
हास गोपन भेल उपजल लाज॥
अब अनुखन दई आँचर हाथ।
सगर वचन कह नत कर माथ॥
कटि गौरव अब पावल नितम्ब।
चलइत सहचरि करि अवलम्ब॥

अब व्यवहार बदल गये हैं—

छन भरि नहि रहे गुरुजन माँझ।
वेकत अंग न झाँपय लाज॥

बालाजन संगे अब रहई।
तरुनि पाई परिहास तहिं करई॥
केलि रभस अब सुने आने।
आनन हेरि ततई देइ काने॥
इथे यदि कोइ करय प्रचारी।
कांदन माखि हासि देइ गारी॥

(अब वह नायिका गुरुजनों में क्षण भर भी नहीं रहती। उघरे हुए अंगों को लज्जा के कारण ढकती भी नहीं कि कहीं लोग ताड़ न लें कि युवती हो गई, लज्जा सीख गई। अब बालाओं के सङ्ग ही रहती है क्योंकि युवतियाँ मिल जाती हैं तो परिहास करने लगती हैं। जब दूसरी युवतियाँ केलि की बात करती हैं, तो दूसरी ओर देखने लगती है, परन्तु कान उन बातों की ओर ही लगे रहते हैं। फिर यदि उसे लेकर कोई हँसी-ठट्टा करने लगता है तो होठों में मुस्करा कर और आँखों में आँसू भर कर गाली देने लगती है।)

वय:संधि की अवस्था में विद्यापति ने राधा के नखसिख का वर्णन नहीं किया है, परन्तु उसके उस रूप का थोड़ा आभास अवश्य दिया है—

मुख रुचि मनोहर अधर सुरंग।
फूटल बान्धुलि कमलक संग॥
लोचन युगल भृंग आकार।
मधु मातल किये उड़इ न पार॥
भाउँक भङ्गिम थोरि जनु।
काजर साजल मदन-धनु॥

४

अभिसार, मान, मिलन और विरह

अभिसार

अभिसार की कठिनाइयों द्वारा कवि प्रेम की गहनता दिखाना चाहता है। सखी के कहने पर अत्यन्त विषम परिस्थिति में नायिका अभिसार के लिए निकलती है। विद्यापति ने कृष्ण और शुक्ल दोनों प्रकार की अभिसारिकाओं का चित्रण किया है परन्तु उनका उद्देश्य नायिका की प्रेम की तीव्रता और गहनता दिखाना है। अंधकारमय रात्रि में[1] वर्षा बरसते समय[2] अथवा

---

[1] नव अनुरागिनि राधा। कछु नहिं मावइ बाधा॥
एकलि कयलि पयान। पंथ विपथ नहिं मान॥
तेजलि मनिमयहार। उच कुच मानय भार॥
कर सौं कङ्कन मुदरी। पंथहि तेजलि सिगरी॥
मनिमय मंजिर पाय। दूरहि तजि चलि आय॥
जामिनि घन अँधियार। मनमथ हेरि उजियार॥
विघिनि वियारित बाट। प्रेमक आयुध काट॥

[2] वारिस जामिन, कोमल कामिनि, दारुन अति अंधिकार॥
पंथ निशाचर, सहज संचर, घन परे जलधार॥
सुन्दरि अपनहु हृदय विचारि।
आँख पसारि जगत हम देखलि के जग तुम सन नारि।
तौंह जनि तिमिर हीन कय मानह आनन तोर तिमिरारि॥

(मन के हरने वाली मुख की कांति है, अच्छे रंग के होठ हैं, ऐसा लगता है कि लाल रंग का बन्धूल फूल श्वेत कमल के साथ खिल रहा हो। दोनों आँखें जैसे दो भ्रमर हों जो मुख-कमल में उतर कर मधु पीकर इतने मत्त हो गए हैं कि उड़ नहीं पाते। भौंहों में थोड़ी-थोड़ी कुटिलता आ गई है, अब वे जैसे काजल की डोरी या प्रत्यंचा से सजे हुए कामदेव के धनुष हों।)

४

अभिसार, मान, मिलन और विरह

अभिसार

अभिसार की कठिनाइयों द्वारा कवि प्रेम की गहनता दिखाना चाहता है। सखी के कहने पर अत्यन्त विषम परिस्थिति में नायिका अभिसार के लिए निकलती है। विद्यापति ने कृष्ण और शुक्ल दोनों प्रकार की अभिसारिकाओं का चित्रण किया है परन्तु उनका उद्देश्य नायिका की प्रेम की तीव्रता और गहनता दिखाना है। अंधकारमय रात्रि में[1] वर्षा बरसते समय[2] अथवा

---

[1] नव अनुरागिनि राधा। कछु नहिं मावइ बाधा ॥
एकलि कयलि पयान। पंथ विपथ नहिं मान ॥
तेजलि मनिमयहार। उच कुच मानय भार ॥
कर सों कङ्कन मुदरी। पंथहि तेजलि सिगरी ॥
मनिमय मंजिर पाय। दूरहि तजि चलि आय ॥
जामिनि घन अँधियार। मनमथ हेरि उजियार ॥
विथिनि बिथारित वाट। प्रेमक आयुध काट ॥

[2] वारिस जामिन, कोमल कामिनि, दारुन अति अंधिकार ॥
पंथ निसाचर, सहज संचर, घन परे जलधार ॥
सुन्दरि अपनहु हृदय विचारि।
आँख पसारि जगत हम देखलि के जग तुम सन नारि।
तोंह जनि तिमिर हीन कय मानह आनन तोर तिमिरारि ॥

शरद पूर्णिमा की चन्द्रिका में विद्यापति नायिका को अभिसार-के लिये निकालते हैं।

परन्तु विद्यापति की रसिकता उन्हें इन पुरानी अभिसार-कथाओं से आगे ले जाती है। वे दिवसाभिसार[३] और पुरुष भेष में अभिसार[४] की भी योजना करते हैं। अभिसार-कुंज में पहुंच कर नायिका को नायक के दर्शन नहीं होते। वह नायक को कटु वचन कहती है। उधर कोई दूती कृष्ण से जाकर कहती है—वह देखो राधा जा रही है।[५] जो दूती राधा के सामने आई थी, वह कृष्ण के पास जाकर राधा के अभिसार का वर्णन करती है—

---

[३] राहु मेघ मै गरराल सूर। पथ परिचय दिवसहि भेला दूर ॥
जो न बरिसय अवसर नहिं होय। पुर परिजन संचर नहिं कोय ॥
चलु चलु सुन्दरि कर गये साज। दिवस समागम सपजत आज ॥
गुरु जन परिजन डर कर दूर। बिनु साहस अभिमत नहिं पूर ॥

[४] अबहुँ राजपथ पुरजन जाग। चाँद किरन जग मंडल लाग ॥
साम्ति रहनि नहिं नूतन देह। हेरि हेरि सुन्दरि पड़ल सन्देह ॥
कामिनि कयलि कतय परकार। पुरुषक वेष कयल अभिसार ॥
धमिल लोल फोंट करि बन्ध। परिहत बसन आन करि छन्द ॥
अम्बर कुच नहिं सम्बरु गेल। बाजन यंत्र हृदय करि लेल ॥
ऐसन मलिल कुंजक माँझ। हेरि न चीन्हइ नागर-राज ॥
हेरइत माधव पड़लन्हि धन्द। परसित भौंल हृदयक द्वन्द ॥
पुनु पुनु उठसि पछिम दिसि हेरि।
कखन जायत दिन कत अछवेरि ॥

[५] गगन मगन भेल तारा। तइओ न काहु तजय अभिसारा ॥
अपना सरबस लाथे। आनक वेल नुडिय दुहु हाथे ॥
टूटल गीम मोतिय हारा। वेकत भेला अछि नखछत धारा ॥

माधव करिय सुमुखि समधाने
तुव अभिसार कयलि जत सुन्दरि कामिनि करु के आने
वरिसि पयोधर धरनि वारि भर, रइहनि महाभय भीमा
तइओ चललि धनि तुअ गुन मनि गुनि, तसु साहस नहिं सीमा
देखि भवन भिति लिखल भुजंगपति, तसु मन परम तरासे
से सुवदनि कर झपइति फनि मनि निहुसि आइलि तुव पासे
कृष्ण स्वयं चिन्ता में थे।

नायिका को दिन मुंदने की चिंता है। वह अभिसार की प्रतीक्षा करती है[6]। उसे डर है यदि कुंज में गई तो मार्ग में ही रात व्यतीत हो जायगी। परन्तु फिर भी दूती की बातों में आकर वह कृष्ण के पास जाती है।[7] रात समाप्त होने को आती है परन्तु नायिका का अभिसार समाप्त नहीं होता[8]।

मान

सभी कृष्ण-कवियों ने राधा के मान का वर्णन किया है। लघु और बड़े मान की कल्पना की गई है। सूरदास ने मान का कारण दिया है। राधा ने कृष्ण के हृदय में अपनी छाया देखी और उसे किसी अन्य तरुणी की मूर्ति मान कर यह समझी कि कृष्ण ने किसी अन्य रमणी को हृदय में स्थान दिया है। इस प्रकार मान की योजना हुई। इसके आध्यात्मिक अर्थ निकल

---

[6] मतकय श्रयलहुँ जीव उपेख। तइओ न मेला मोहि माधव देख

[7] माधव जाइत देखलि पथ रामा

[8] रइनि छोटि अति भीरु रमनी। कत छन आउब कुंजर गमनी
मनि मयि भीम भुजंगम सरना। कत संकट तसु कोमल चरना
त्रिहि पाप करि परिहार। अखिनिन विचारित उपजय संका
दस दिस घन अंधियार। चलइत खलइ लखइ नहिं बार
सब जानि पलटि मुलोलि। आउत मानकि मानत लोलि

सकते हैं। थोड़ा-सा भी सन्देह, थोड़ा-सा भी अहंकार भक्त और भगवान के बीच में बाधा डाल देता है, चाहे फिर उसमें तत्व कितना ही हो, अतः भक्त को आत्मसमर्पण करते हुए सन्देह-संशय को छोड़ देना होगा, उसे अपना व्यक्तित्व मिटाना होगा। दार्शनिक परिभाषा में उसे अहम् से छूटना होगा।

परन्तु स्वयं सूरदास में यह आध्यात्मिक अर्थ रूपक के पीछे छिप जाता है। कवि मान का इतना विस्तृत वर्णन करता है कि उसके विस्तार में प्रतीक हो जाता है।

यहाँ विद्यापति ने तो मान का कारण ही अधिक स्थूल दिया है। कृष्ण प्रातः काल आये हैं राधा उनके रंग से ही ताड़ जाती है कि उन्होंने परनारी-रमण किया है।[९] यहाँ हृदय की छाया नहीं। इस प्रकार विद्यापति के मान-वर्णन से किसी आध्यात्मिक अर्थ की सिद्धि नहीं होती। ऐसा जान पड़ता है कि कवि विप्रलम्भ शृंगार के एक अंग को अपने सामने रख कर लिख रहा है। कृष्ण मानिनी राधा से विनय करते हैं। उनकी शरण जाते हैं[१०]। विचित्र ढंग से शपथ खाकर कहना चाहते हैं कि

---

[९] लोचन अरुन बुझलि बड़ भेद
रैन उजागरि गरुअ निवेद
तहहि जाहु हरि न करहु लाथ
रैन गमोलह जिन के साथ
कुच कुमकुम मालल हिय तोर
जनि अनुराग रागि कर गोर
आनक भूषता लागल अंग
उकुति वेकत होय आनक संग

[१०] की लागी झाँपसि बदन सुन्दरि, हरसि चेतन मोर।
परुष बध कर भय करसि ना, बड़ो साहस तोर॥

मैंने किसी अन्य स्त्री का स्पर्श नहीं किया। बात झूठ निकलने पर एक उतनी ही विचित्र ताड़ना की कल्पना करते हैं[११]। राधा नहीं मानती। दूतियाँ राधा को मनाती हैं। उन्हें यौवन की अनस्थिरता की याद दिलाती हैं[१२]। कृष्ण के ऐश्वर्य और पिछले विलास का स्मरण कराती हैं[१३]।

मानिन आकुल हिरदय मोर।
मदन वेदन सहत जात न, सरन लेइली तोर॥

[११] हे धनि मानवि करहु संजात।
तुअ कुच हेम घटहार भुजंगिनी ताके उपर धरि हाथ॥
तोहें छाड़ि तम जो परसो कोय। तुअहार नागिनि काटव मोय॥
हमर बचन यदि नहु परतीत। बुझिय करहु साति जेहो उचीत
भुज पासे बांधि जघन पर ताड़ि। पयोधर पाथर हिय देहु दारि॥
उर कारागार बांधि राखो दिन राति। विद्यापति कह उचित या साति॥

[१२] दिवस तिल आध राखवि यौवन वहइ दिवस सब जान।
भाल मन्द दुइ सँगे चलि जायव पर उपकार से लाभ॥

[१३] जाके दरस बिनु झरय नयन।
अब नहिं हेरसि ताकर वयन॥
सुन्दर तेजहु दारुन मान।
साधय चरन रसिक बर कान॥
भागे मिलल यह श्याम रसवन्त।
भागे मिलल यह समय वसन्त॥
भागे मिलल यह प्रेम सगाति।
भागे मिलल यह सुखमय राति॥
आजु यदि भामिनि तेजब कन्त।
जनम गवाइब रोइ एकन्त॥

वह कहती हैं कि इन कृष्ण के लिए कितनी ही स्त्रियाँ प्रतीक्षा में रहती हैं, तू ही मान कर रही है[१४]। कहती हैं कि एक प्रीति ने श्याम के सब गुणों को अपदार्थ कर दिया है। कृष्ण राधा के पैरों में लोट जाते हैं परन्तु मान बना रहता है। रात बीत जाती है। पूर्व दिशा में सूर्योदय हो जाता है।

कृष्ण दूतियों को भेजते हैं। वे उनकी विरह-दशा का वर्णन करती हैं[१५]। उसे शिक्षा देती हैं कि बड़े लोग जिससे प्रीति करते हैं रंज होने पर भी उसे नहीं छोड़ते[१६]। उसे विश्वास दिलाती हैं कि लक्ष्मी सदृश रूपवती स्त्री को भी कृष्ण नहीं देखते।

राधा दूतियों की बातों का उत्तर नहीं देती। कृष्ण का नाम सुनकर कान मूँद लेती है। केश, कुसुम, तृण तथा ताम्बूल भेज कर कृष्ण ने यह संकेत किया था कि मैं वैराग्य धारण कर लूँगा अन्यथा क्षमा करके अनुराग-प्रेरित कुसुम ग्रहण करो। दाँत में तृण लेकर कहता हूँ कि ऐसा अपराध फिर कभी नहीं

---

[१४] लाख लाख नागरि जेहि हेरइ से सुभ दिनकर मान।

[१५] तोहर विरह वेदन बाउर सुन्दर माधव मोर।
छिनहिं सचेतन छिनहिं अचेतन छिनहिं नाम धरे तोर॥

[१६] बड़ जन जाकर पिरीत रे
कोपहुँ न तजय रीति रे
काग कोइल एक जाति रे
भये भमर एक भाँति रे
हेम हरिदि कत बीच रे
गुनहिं बुझिय उयें नीच रे
मनि कादव लपटाय रे
तैं कि तनिक गुन जाय रे

करूँगा। मेरे प्रणय और क्षमा के निदर्शन-स्वरूप यह ताम्बूल ग्रहण करो। राधा ने मुँह ही मोड़ लिया[17]। स्वयं कृष्ण आकर भाँति-भाँति से अनुनय-विनय करते हैं, परन्तु राधा नहीं मानती। कृष्ण गद्‌गद् हो जाते हैं। चरण छूने का साहस नहीं है, अतः हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं, मुँह देख रहे हैं। अब उनकी भेजी हुई दूती से राधा कृष्ण की शिकायत करती है। कृष्ण को सामने पाकर दूती उन्हें धिक्कारती है जिससे राधा प्रसन्न हो जाय। अब कृष्ण राधा के पैरों में मूर्छित हो जाते हैं। राधा को अनुताप होने लगता है—मान के कारण प्रीति मिट्टी के समान हो गई।

विरह

विद्यापति जहाँ संयोग-शृंगार में अत्यन्त उत्कृष्ट कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं, वहाँ विप्रलम्भ शृंगार में उससे भी कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं। वास्तव में उनका विप्रलम्भ शृंगार ही उन्हें विलासिता के दोष से बचाये हुए हैं। संयोग-शृंगार के चित्रण अत्यन्त स्थूल हैं। उनमें वासना की गंध है। परन्तु वियोग-शृङ्गार के अनेक चित्रों में कवि पार्थिवकता से ऊपर उठ जाता है। उसने राधा को साधारण केलि-विलासमय नारी से ऊपर उठा कर अतीन्द्रिय जगत की सृष्टि की है जहाँ केवल तन्मयता, प्रेम-विह्वलता और प्रियचिन्तन के सिवा और कुछ नहीं रह जाता। यही वे स्थल हैं जिनके कारण विद्यापति वैष्णव कवियों को ग्राह्य हुए, नहीं तो उनके संयोग-शृङ्गार की गर्हित भावनाओं ने उन्हें सदा के लिए लांच्छित कर दिया था।

---

[17] आज कि कहब विशेखी
लाख लछिमि कहँ लखय न लेखी

संयोग-मिलन वाले पदों के लिए भले ही कहा जा सके कि उन पर तत्कालीन राज-दरबारों के वातावरण का प्रभाव था या कवि की अपनी कुरुचि उनमें प्रस्फुटित हुई है परन्तु विप्रलंभ शृंगार के गीत बिना गहरी प्रेमानुभूति के नहीं निकल सकते और इस प्रेमानुभूति का स्रोत लौकिक नहीं हो सकता।

कृष्ण मथुरा जाने वाले हैं। राधा अपनी सखी से कहती है—

सखि हे बालमु जितब बिदेशो।
हमें कुल कामिनि कहइते अनुचित तोहहि देहुनि उपदेसे॥
ई न विदेशक बेलि।
दुरजन हमर दुख न अनुमापव ने तोहें पिया गेलइलि किछु दिन करथु निवासे
हमें पूजल जे सेहें पए भुञ्जब राखथु पर उपहासे॥
होए ताह किए वध भागी।
जहि खने हुनि मन गाएब चिन्तब हमहु भरब धसि आगी

(हे सखी, प्रियतम विदेश जा रहे हैं। मैं कुल-कामिनी हूं, मेरा कहना अनुचित होगा, तुम उन्हें उपदेश दो। यह विदेश जाने का समय नहीं है। दुर्जन मेरे दुख की माप नहीं करते। तुम भली हो, अतः प्रियतम के पास जा कर कहो कि कुछ दिन निवास करें। मैंने जैसा किया है वैसा फल मैं पाऊँगी, परन्तु वे तो पर-उपहास से मेरी रक्षा करें, नहीं तो वे हत्या के भागी होंगे। वे जब चलने का विचार करेंगे तो मैं उसी समय आग में कूद पड़ूँगी।)

सखी के असफल होने पर राधा स्वयं कृष्ण से अनुनय विनय करती हैं—

माधव तोंहे जनु जाह विदेशे
हमरो रंग-रभस लये जएवह लएवह कौन सन्देशे।

(हे माधव तुम विदेश मत जाओ। तुम जाते समय मेरा रंग-रास, हास-परिहास ले जाओगे। भला बताओ तो, बदले में क्या लाओगे?)। विद्यापति ने राधा-कृष्ण का विदा-चित्र अत्यन्त कुशल लेखनी से चित्रित किया है। युगल-जोड़ी के सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण बड़ा मार्मिक हुआ है। राधा रो-रो कर जब मूर्छित हो जाती है तो कृष्ण कहते हैं—'रहने दो मैं मथुरा नहीं जा रहा।'

कानु मुख हेरइते भाविनि रमनी, फुकरइ रोअत झरझर नयनी।
अनुमति माँगते वर विधु वदनी हरि हरि शब्दे मुरछि पडु धरनी॥
आकुल कत परबोधइ कान, अब नहिं मथुरा करब पयान।
इह वर शब्द पैठल जब श्रवने, तब विरहिन धनि आओल चेतने।
निज करे धरि दुहु कानुक हाथ, जतने धरलि धनि अपना माथ।
विम्भिये कहय वर नागर कान, हम नहिं मथुरा करब पयान।
जब धनि पाओल इह अश्वोयास, बैठलि पुनु तब छोड़ि निशास।
राइ परबोधि कए चलत मुरारि, विद्यापति इह कहइ न पारि॥

(कृष्ण जा रहे हैं। राधा उनकी मुख की ओर देखकर रो पड़ती है। नेत्रों से अश्रु झर-झर झरते हैं। कृष्ण के जाने की अनुमति माँगते ही 'हरि हरि' कहती हुई मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। कृष्ण आकुल होकर अनेक प्रकार से प्रबोध करते हैं। कहते हैं अब हम मथुरा नहीं जायेंगे। इन शब्दों को कान में पड़ने से राधा को होश आ जाता है। राधा ने यतन से कृष्ण के दोनों हाथ पकड़ लिए और उन पर अपना मस्तक धर दिया। कृष्ण बराबर प्रबोध कर रहे हैं कि मथुरा नहीं जायँगे। यह आश्वासन पाकर राधा निश्वास छोड़कर उठ बैठती हैं। विद्यापति कहते हैं कृष्ण राधा को प्रबोध कर भी चले गये, यह कथा कहते नहीं बनती)।

विद्यापति ने कृष्ण-राधा-प्रसंग को अनेक प्रकार से वर्णन किया है। कहीं कृष्ण राधा को सोता हुआ छोड़कर चले जाते हैं :

एक शयन सखि सूतल रे, आछल बलमु निशि मोर।
जानल कतिखन तेजि गेल रे, बिछुरल चकेवा जोर॥
शून सेज हिय शालय रे, पिया बिनु घर भोजे आगि।
बिनति करउँ सहिलोलिन रे, मोहि देह अगिहर साजि॥

(रात प्रियतम आए। हम एक शय्या पर सो रहे थे। न जाने कब प्रीतम चले गये। चकई-चकवे की जोड़ी बिछुड़ गई...)

कहीं कृष्ण जाने से पहले राधा को जगा कर विदा लेते हैं—

उठु उठु सुन्दरि जाइछि विदेस।
सपनहु मोर नहिं पाएव उदेस॥
उठतइत उठि बैठिल मन मारि।
विरहक मातलि चुप रहें नारि॥

(सुन्दरि, उठ, मैं विदेश जा रहा हूँ। तुझे वह देश सपने में भी नहीं मिलेगा, उठने को तो राधा मन मार कर उठ गई परन्तु विरह के दुख से चुप रही।) यहाँ मधुपुर (मथुरा) में थोड़ा-सा रहस्यात्मक इंगित है। यह साधारण मथुरा नहीं है जहाँ राधा सरलता से पहुँच जाए। सुबोधिनी में वल्लभाचार्य ने इस मथुरा के सम्बन्ध में कहा है—सर्वतत्वेषु यो विष्ट: स भूमावपि संगत:। स नित्यं क्वचिदेवास्ति तत्स्थानं मथुरा स्मृता। (जो समस्त तत्वों में प्रविष्ट है, वही भूमि में भी प्रवेश किये हुए हैं। वह नित्य-प्रति कहीं-न-कहीं है। जिस स्थान पर वह है उसे मथुरा कहकर स्मरण किया जाता है[१८]।)

[१८] सुबोधनी १०-६८-६

जब राधा विरहिणी हो जाती है तो वह इसी दूर बसी हुई मथुरा में संदेश भेजना चाहती है और अपने भाग्य को दोष देती है—

माधव हमरो रहल दुरदेश।
केओ न कहै सखि कुशल संदेश॥
जुगजुग जिवथु वसथु लख कोस।
हमर अभाग हुनक नहिं दोस॥
हमर करम भेला विहि विपरीत।
ते तजलन्हि माधव पुरविल प्रीत॥
हृदयक वेदन बान समान।
आनक वेदन आन न जान॥

(हमारा माधव दूर देश चला गया। हे सखि, उनका कुशल संदेश कोई नहीं कहता। वह चाहें लाख कोस पर रहें परन्तु युग युग जियें। उनका कोई दोष नहीं, दोष मेरे भाग्य का है। ब्रह्मा ही विपरीत हो गया। इसी से तो माधव ने पुरानी प्रीति भुला दी। इस हृदय में यह बात बाण की तरह पीड़ा दे रही है, परन्तु कोई दूसरे की पीड़ा क्या जाने?)

परन्तु वास्तव में इस संदेश को मूल रूप से अनुभूति की उस गहराई में ढूँढ़ना चाहिए जो कवि के इन गीतों में अभिव्यक्त हुई है। चंडीदास के गीतों में यह अनुभूति अत्यन्त सहज निरलंकार रूप से व्यक्त हुई है परन्तु विद्यापति ने इसे काव्य-कला में पुष्ट करके और भी मार्मिक बना दिया है। वे सदा ही चंडीदास के ऊँचे धरातल पर पहुँच जाते हैं तो उनकी कविता चंडीदास से सफलतापूर्वक होड़ करती चलती है।

राधा की आँखों से आँसू निरन्तर झरते हैं उसे यह दुःख है कि वह अपना सर्वोत्तम उपहार कृष्ण को न दे

सकी[१९]। वह उनके पास जाना चाहती है। जिस पथ से वह गये हैं उस पथ की ओर वह आशा की दृष्टि फेरे बैठी रहती है[२०]। वह ब्रज के दुखी पशु-पक्षियों से पूरा तादात्म्य स्थापित किए हुए है जो मथुरा की ओर दौड़ते हैं।

विद्यापति ने सारे विरह-प्रसंग में (कुछ दृष्टिकूट के स्थलों को छोड़ कर) निरलंकारिक भाषा और गतिमय छोटे छन्दों का प्रयोग किया है जिससे राधा की करुण दशा अत्यन्त सचाई से व्यक्त हो सकी है। यह अवश्य है कि विद्यापति इस अवसर पर भी परम्परागत काव्य-सम्पदा को नहीं छोड़ पाते।

पूर्व प्रणय की स्मृति राधा को आकुलता से भर देती है। "वह फिर कब होगा—वैसा ही मिलन ?" उसका हृदय चीत्कार करने लगता है[२१]। वह वियोग से कृश हो जाती है। उसकी

---

[१९] मोहि तेजि पिया गेल विषम विदेश
नैन बरिखि गेल मेघ असरेस।

[२०] मोहन मधुपुर बास रे।
हमहुँ जायब तनि पास रे॥
भललनि कुबजा के नेह रे।
तजलनि हमरो सिनेह रे॥
कत दिन ताकब बाट रे।
रटला जमुनक घाट रे॥
उतहिं रहथु दृग फेरि रे।
दरसन देथु एक बेरि रे॥

[२१] कत दिन घूघव यह हहकार।
कत दिन घूचव गुरु दुख भार॥
कत दिन चाँद कुमुम हव मेलि।
कत दिन कमल भ्रमर करु केलि॥

सखियाँ उसकी परिचर्या में लगी रहती हैं और उसे प्रबोध करती हैं[२२]। इस अवस्था में राधा का चित्रण कवि इस प्रकार करता है।

सपनेहु नहिं पूरल मन आस। दयन हेरल हरि एत अपराध॥
मन्द मनोभवो मन जर आगी। दूलभ पेम पराभव लागी॥
चाँद वदनि धनि चकोर नयनी। दिवस दिवस भयल चउगुनि मलिनि॥
कि करत चानन की अरविन्द। विरह विधर जो युतिअ निन्द॥
अवध सखो जन न बुझय आधि। आन उपय करय आन वेआधि॥
मनसिज मन के मन्द ववेया। छाडि कलेवर मानस वेया॥
चिन्तय विकल हृदय नहिं धीर। वदन निहार नयन बह नीर॥

कृष्ण भी राधा के मान का उत्तर मान से देते हैं। अब उसके अनुनय विनय के लिए नहीं आते। राधा के मन में क्षोभ होता है। मान उतर आता है। उसकी बात सुनकर दूती कृष्ण

कत दिन पिय मोर पूछ्य बात।
कबहुँ पयोधर देइव हाथ॥
कत दिन लेइ बैठायब कोर।
कत दिन मनोरथ पूरब मोर॥
२२ मलिन चिकुर सजनी तनुचीर।
करतल वयन नयन फरु नीर॥
सुनु माधव किथ बोलब तोय।
तुअ गुन लुबुधि मुगुधि मेलि सोय॥
कोइ जो कहे घर आयल मुरारि। सुनि चेतन मेलि नाय तोहारि॥
और
कोइ रह राइ उपेखि। कोइ सिर धुन धुनि देख॥
कोइ सखि परिखय साँस। हम छायलि तुअ पास॥
पलटि चलहु निज गेह। मन गुन पुरइ सिनेह॥

के पास जाती है। कृष्ण पूछते हैं कि मानिनी ने मान तोड़ा या नहीं। दूती कहती है—आशा पूरी हो गई। मान टूटा। अब दोनों के मन में विरह उत्पन्न होता है, कृष्ण पूर्व प्रेम का परिचय देकर राधा को मना लेते हैं। राधा के मन में ग्लानि है कि सारी रात मान में बीत गई। जब मेरा मन प्रसन्न हुआ तब सूर्योदय होगया। गुरुजन जाग गये। अधिक चतुराई में मैं अज्ञानी हो गई। यह मेरे मन का दोष था कि अवसर काल को देखकर रोष न किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने एक ऐसे मान का चित्र खींचा है जो प्रातःकाल होते टूट गया और दूसरे ऐसे मान का जो अधिक काल तक बना रहा। इन मान के अवसरों में कई परिस्थितियाँ दिखलाई गई हैं। आध्यात्मिक संदेश पढ़ा नहीं जा सकता। परन्तु दोनों का अन्त में समान रूप से आकुल होना और राधा का मानोपरान्त क्षोभ आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में रखे अवश्य जा सकते हैं। परन्तु जैसा हमने कहा है प्रतीक-भाव स्पष्ट नहीं है।

विद्यापति ने नव-नव रूप से विरहिणी राधा के मनोभावों का चित्रण किया है—

१—अंकुर तपन ताप यदि जारब कि करब वारिद मेहे
ई भव यौवन विरह गँवायब कि करब से पिय लेहे
हरि हरि को यह देव दुरासा।
सिन्धु निकट यदि कंठ सुखायब के दुर करब पियासा ॥
चन्दन तरु जब सौरभ छोड़ब ससधर बरिखब आगी।
चिन्तामनि जब निज गुन छाड़ब की मोर करम अभागी ॥
सावन माँह घन बुन्द न बरिखब सुरतरु बाँझ कि छाँदे।
गिरिधर सेविठाम नहिं पायब विद्यापति रहु धनदे ॥

२—सजनी को कहु आयब कन्हाई ।
विरह पयोधि पार किय पायब मो मन नहिं पतियाई ॥
एखन तखन करि दिवस गॅवायनु दिवस दिवस करि मास
मास मास करि बरिस गवायनु खोयनु ये तनु आस ॥
हिमकर किरन नलिनि यदि जारब कि करबि माधवि मास ।
भन विद्यापति सुन वर युवती अब नहिं होहु निरास ॥
३—हिम हिमकर कर ताप तपयनु ये गेला काल वसन्त ।
कन्त काक मुख नाहिं संवादह किय करु मदन दुरन्त
जाननु रे सखि सुदिवस भेला ।
केहि छन विहि मोरा वीमुख भेला पलटि दीठि नहिं देला ॥
यत दिन तनु मोर साध सधायनु पूछनु अपन निदान ।
अवधिक आस मेल सब कहिनी कत सह पाप परान ।
४—कत दिन माधव रहत मथुरपुर, कब छूयब विहि वाम ।
दिवस लिखी लिखि नखर खोआयनु बिछुरल गोकुल नाम
हरि हरि काह कहब सम्बाद
सुमरि सुमरि नेह खिन भेला मोर देह
जिवनक अब कौन साध ।

यह अवश्य है कि विद्यापति ने राधा की विरह-दशा के चित्रण के लिए कूट का भी आश्रय लिया है, परन्तु ऐसे पद बहुत कम हैं। वास्तव में पांडित्य विद्यापति का पीछा कहीं छोड़ता परन्तु जहाँ यह पांडित्य हृदय-तत्व से मिल जाता है वहाँ विद्यापति सहज ही उत्कृष्ट काव्य की रचना में सफल हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि अनेक स्थलों पर जयदेव के भावों से स्पष्ट रूपसे प्रभावित हैं[२३] और जयदेव ने अपने कितने

---

[२३] हृदि विषलता हारो नायं भुजङ्गम नायकः
कुवलय दल श्रेणी कण्ठे न सा गरल द्युतिः

ही सुन्दर भाव संस्कृत काव्य को मथ कर निकाले थे। परन्तु जहाँ विद्यापति मौलिक हैं वहाँ वह अद्वितीय हैं।

संक्षेप में, विद्यापति ने विरह का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। चंडीदास और सूरदास को छोड़कर कोई भी कृष्ण कवि उनकी होड़ नहीं कर सकता। उनका विरह-चित्रण एक साथ ही चंडीदास और सूरदास दोनों के काव्य को स्पर्श कर लेता है। चंडीदास के विरह-चित्रण की भाँति यह तन्मयता-प्रधान है, सहज स्वाभाविक है और सूरदास के विरह-चित्रण के समान काव्य-कला से परिपुष्ट और व्रज की अनेक परिस्थितियों से मिला हुआ है।

मलयज रजो वेद भस्म प्रिय विरहिते मयि
प्रहर न हर भ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा कि भुआवसि

(जयदेव)

कतिहुँ मदन तनु दहसि हमारि
हय नहु संकर हँउ वर नारि
नाहिं जय यह वेनि विभंग
मालति माल सिर नहि यह गंग
मोतिय-बद्ध-मउलि, नह इन्दु
भाल नयन नह, सिन्दुर विन्दु
कंठ गरल, नह मृगमद सार
नहिं फनराज उर यह मनिहार
नील पटम्बर, नह बघ छाल
केलिक कमल यह, नाहि कपाल
विद्यापति कह एहन सुचन्द
अंग भसम नह, मलयज पंक

(विद्यापति)

इस विरह-वर्णन का विश्लेषण करते हुए श्रीयुत दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—"यदि विद्यापति इन अन्तिम पदों में भावों के इतने ऊँचे स्वर पर नहीं उठते और राधा-कृष्ण-कथा को बार-बार आध्यात्मिक अर्थों से अभिभूत नहीं करते तो विद्यापति के पद धार्मिक साहित्य की गणना में कभी भी नहीं आते"। विरह के प्रसंग में विद्यापति भाव पर अधिक बल देते हैं, मनोवैज्ञानिकता के बल पर वह अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खड़े करते हैं—

(१) विरहिणी राधा

माधव देखलि बिओगिनि बाम
अधर न हाँस विलास सखी सँग, अहनिसि जप तुअ-नाम

(२) प्रेमोन्मत्त राधा

अनुखन माधव माधव सुमिरत, सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल, आपन गुन लुबधाई॥

(३) कुछ अन्य चित्र

अ—चन्दन गरल समान। सीतल पवन हुतासन जान॥
हेरइ सुधानिधि सूर। निसि बैठलि धनि भूर॥
हरि हरि दारुन तोहर सिनेह। ता हेरि जीवन पोड़लि संदेह॥

इ—माधव कि कह ताही
तुअ गुन लुबुधि मुगुध भेलि राही
मलिन बसन तनु चीरे
करतल कमल नयन ढरु नीरे
उर पर सामरि वेनी
कमल कोप जनि कारि नागिनी

केओ सखि ताकय निसासे
केओ नलनीदल करम बतासे
केओ बोल आयल हरि
ससरि उठलि चिर काम सुमरि।

इस प्रकार विद्यापति ने विरहिणी राधा का चित्र अत्यन्त सहृदयता से खींचा है। कभी उन्माद की अवस्था में वह यह भी भूल जाती है कि कृष्ण कहाँ गये हैं। कभी उन्हें दूर देश गया समझती है और यह लालसा करती है कि पंख होते तो उनके पास उड़ कर जाती। वसन्त और वर्षा का मेघ-गर्जन उसे दुख देते हैं। उसे कृष्ण की याद आती है और वह कह उठती है—

तुहु जलधर सहजहिं जलराज।
हम चातक जल बिनुक काज॥
जल दय जलद जीव मोर राख।
अवसर देले सहस होय लाख॥

और भी—

सजनी, कान के कहनि बुझाय।
रोपि प्रेम बिज अंकुर मोड़ल, बाँचक कौन उपाय?
तेल विन्दु जस पानि पसारल, ऐसन तुअ अनुराग।
सिकता जल जस छनहिं सुखायाल, तेसन तोहर सुहाग॥

वास्तव में विद्यापति के कृष्ण-काव्य का एक बड़ा भाग विरह चित्रण से भरा पड़ा है। उसमें इन्द्रियों की अनुभूति इतनी प्रकट नहीं हुई है जितनी प्राणों की आकांक्षा।

कहीं-कहीं इन पदों में आत्मा-परमात्मा-सम्बन्धी रहस्यवाद भी स्पष्ट झलक जाता है, जैसे—

एक दिन छलि नवरीति रे
जल मिन जेहन प्रीति रे
एकहि बचन बिच भेल रे
हसि पहु उतरो न देल रे
जाहि बन केओ न डोल रे
ताहि बन पिआ हँसि बोल रे
धरब जोगिनिआ के भेष रे
करब मे पहुक उदेस रे

परन्तु अधिकांश पदों में नारी की पुरुष के प्रति रति इस तीव्रता और तन्मयता से प्रकट हुई है कि उसका प्रेम यौनतत्व-रहित और रहस्यात्मक हो जाता है। यदि, जैसा आलोचकों ने कहा है, विद्यापति का ध्येय नर-नारी के प्रेम-प्रसंग का चित्रण ही है तो भी वह साधारण लौकिक प्रेम नहीं है। जब प्रेम उस ऊँची भूमि पर उठता है जिस भूमि पर विद्यापति ने राधा-कृष्ण के प्रेम को स्थापित किया है तो उसमें शरीर-सम्बन्ध नहीं रह जाता और वह भावों का आलोड़न-विलोड़न मात्र रह जाता है। वह पृथ्वी से ऊपर उठ कर स्वर्ग की सीमायें छू लेता है।

विरह-चित्रण में विद्यापति अनुभूति से काम ले रहे हैं, पांडित्य पिछड़ गया है। यही कारण है कि हमें शास्त्रोक्त विरह की दशों दशाएँ तो मिलती ही हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त भी विरहिणी की अनेक दशाओं का चित्रण हमारे सामने उपस्थित हो सका है। विप्रलम्भ शृङ्गार में १० दशाएँ इस प्रकार निरूपित की गई हैं—स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, मूर्च्छा, व्याधि, उद्वेग, प्रलाप, जड़ता, उन्माद, मरण। विद्यापति-पदावली से इन सभी दशाओं का उदाहरण दिये जा सकते हैं:

एक दिन छलि नवरीति रे
जल मिन जेहन प्रीति रे
(स्मरण)

पहिले पिया मोर सुख मुख हेरि हेरि तिलयक छोड़ल न अंग
अपरुब प्रेम पास तनु गांथल, अब ते जल मोर संग
(गुणकथन)

कत दिन चाँद कुमुद इब मेलि
कत दिन कमल भ्रमर करु केलि
कत दिन पिय मोर पूछब बात
कबहु पयोधर देइब हाथ
कत दिन लेइ बैठाइब कोर
कत दिन मनोरथ पूरब मोर
(अभिलाषा)

वर रामा हे ! सो किय बिछुरन जाय
कर धरि माथुर अनुमति माँगलि ततहि पड़ल मुरछाय
नहि बहे नयनक नीर
मुरछि पड़ल तरु तीर
(मूर्च्छा)

कि कहब सुन्दरि तोहरि काहिनी
कहहि न पारिअ देखलि जहिनी
अनिल अनल सम मलअज बीख
जे छल सीतल से मेला तीख
चाँद उँतानय सविताहु जीनि
नहिं जीवन एक मत भेला तीनि

किछु उपचार न मानय आन
एही बेयाधि अधिक पंचबान[२४]

(व्याधि)

सजनी, को कहु आयब मन्दाई
विरह पयोधि पार किय पायब मो मन नहिं पतियाई
एखन तखन करि दिवस गँवायनु खोयनु ये तनु आस
मास मास करि बरिस गवायनु खोयनु ये तनु आस

(उद्वेग)

कह तु कह सखि बोल तु बोल तु रे हमर पिया कोन देश रे
मदन सरानल हह तनु जर जर कुशल सुनत सन्देस रे
हमरो नागर तहवाँ भोरायर कइसन नागरि मिलल रे
नागरि पाइया नागर सुख मेला हमरो हिय हिय सेल रे
सखा करब चुर, वसन करब दुर, तोड़ब गजमति हार रे
पिय यदि तेजल, सोलह सिंगार सब यमुन सलिल अब डार रे
सीस क सींदुर सजनी दुर कर पिय बिन सकल निरासरे

(प्रलाप)

नीकर पुरुप पिरिती। जिव दय सन्तर युवती ॥
नीचल नयन चकोर। टरिए टरिए पलनोर ॥
पथए चहै हेरि हेरी। पिय गेला अवधि बिसेरी ॥

(जड़ता)

भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानी।
अनुखन राधे राधे रटतिहि आध आध कहु बानी ॥

---

२४ हे हरि, उस सुन्दरी की बात क्या कहूँ। जैसा कुछ देखा है, कहा नहीं जाता है। उसे चन्द्रमा सताता है; सूर्य दाह करता है। उसका जीवन एक नहीं रह गया है, तीन-तेरह हो गया है। कोई उपचार लाभदायक नहीं होता। यही व्याधि है। उसका वैद्य कामदेव है।

माधव कठिन हृदय परवासी
तोहरि विलाषिनि पेखनु बिरहिनि अबहु पलटि गृह जासी
दखिन पवन बह कैसे युवति सह ताहि दुख देइ अनंग
गेलहुँ परान आस देइ राखइ दस नख लिखइ भुजंग
मन विद्यापति सिवसिंह नरपति विरहक कर उपचारि
पर मृतक उर पायस लेइ कर वायस नियरे पुकारि[२९]

(उन्माद)

मधु पुर गेल भगवान रे
हुन बिनु त्यागव प्रान रे[२६]

(मरण)

---

[२९] पुरुष की प्रीति निष्ठुर हुआ ही करती है। प्राण पर खेल कर रमणी प्रेम-पयोनिधि में तैरती है। विरह में नयन निश्चल हो गये हैं, जिधर देखती हैं उधर ही टकटकी बँध जाती है। राह की ओर देखते-देखते उसकी आँखे अनवरत बहती हैं। सोचती है प्रियतम चले गये, अवधि भी भूल गये।

[२६] मरण-दशा के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित पांडित्यपूर्ण पद भी उद्धृत किया जा सकता है। जिससे यह स्पष्ट होगा कि कवि काव्य-रूढ़ियों का किस सुन्दरता से प्रयोग कर सकता है और उनके द्वारा वह नायिका के मनोभावों का कितनी सूक्ष्मता से अंकन कर सका है।

माधव अब न जीउति राही।
जतवा जनिकर लेनें छलि सुन्दरि से नभ सौपलक ताही ॥
सरदक ससधर मुखरुचि सोपलन्हि हरिन के लोचन लीला।
केस पास चामरु के सोपलन्हि पाए मनोभव पीढा ॥
दसन बीज दाड़िम के सोंपलन्हि पिक के सोंपलन्हि बानी ॥
देह दसा दामिनि के सोंपलन्हि ई सभ ऐलहु जानी ॥
हरि हरि कए पुनि उठति धरणि धरि रैन गमावए जागी।
तोहर सिनेह जीव दए जापथि रहलिह धनि एत लागी ॥

विद्यापति के काव्य की नायिका हिन्दू है, अतः प्रिय-मिलन और प्रिय-वियोग दोनों अवसरों पर विद्यापति हिन्दू नारी की चारित्रिक उज्ज्वलता को हमारे सामने रखना नहीं भूले हैं। विरह-काव्य में एक अभिनव सृष्टि होती है जब विद्यापति की राधा कहती है—

माधव हमर रहल दुर देश
केओ न कहइ सखि कुशल सन्देश
युग युग जिवयु बसयु लख कोस
हमर अभाग हुनक कौन दोस

इसी तरह जहाँ विद्यापति भाव के प्रवाह में बह कर कल्पना और कला को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ जाते हैं, वहाँ उनका काव्य लौकिक हो जाता है—

विपत अपत तरु पाओल रे पुनि नव नव पात
विरहिनि नयन विहल विहि रे अविरल बरसात
सखि अन्तर विरहानल रे नितक बाढ़ल जाय
बिनुहरि लख उपचारहु रे हिये दुख न मेटाव
पिय पिय रटय पिपहरा रे हिय दुख उपजाव
कुदिना हित जन अनहित रे थिक जगत सो भाव

अनुभूति का इससे अधिक निरलंकार रूप क्या होगा? भाषा, भाव, छंद का इससे सुन्दर संगम कहाँ मिलेगा?

प्रेमियों के विरहावस्था के मनोभावों में से कौन-सा भाव ऐसा है जो विद्यापति ने छोड़ दिया है या जिसका उन्होंने असफल चित्रण किया है। विरहिणी को जीवन इतना भारी हो जाता है कि उसे मृत्यु सुन्दर लगने लगती है। वह आत्मघात की बात सोचती है परन्तु आत्मघात तो

पाप है, कैसे करे।[२७] पक्षी होती तो वह प्रियतम के पास उड़ जाती।[२८]

मिलन

विद्यापति ने राधा-कृष्ण के संयोग शृंगार के सम्बन्ध में अनेक पद लिखे हैं। जहाँ कितने ही पद उत्कृष्ट हैं, वहाँ कितने ही पद ऐसे भी हैं जिन्हें आज-कल की रुचि ग्रहण नहीं करती। संयोग शृंगार किस सीमा तक काव्य का विषय हो सकता है, इस बात की विवेचना विद्यापति ने नहीं की, ऐसा जान पड़ता है। इन पदों के पीछे स्वतः न कोई धार्मिक प्रेरणा है, न आध्यात्मिक रूपक है। इनमें राधा युवती और कृष्ण युवक का दैहिक विलास ही वर्णित हैं।

वस्तुतः हमारे प्राचीन काव्य ने जहाँ जीवन के अन्य अंगों को काव्य का विषय स्वीकार किया, वहाँ "विलास" को भी नहीं छोड़ा। पुष्प-संग्राम के रूप में रति का वर्णन संस्कृत काव्यों का प्रिय विषय है। जहाँ हर-पार्वती के केलि विलास का वर्णन हो सकता है, वहाँ "गोपी पीन पयोधर मर्दन चंचल कर युग शाली" ललित नायक कृष्ण और उनकी प्रियतमा राधा का नग्न

---

[२७] एत दिन हृदय हरख छल आवे सब दुर गेल रे
रॉकक रतन हेड़ायल जगते ओ सुन भेल रे
विहि निरदय कोने दोसेँ दहुँ देल दुख मनमथ रे
मन कर गरल गरासिए पाप आतम बध रे
जीवन लाग मरनसन मरन सोहावन रे
मोर दुख के पतिआएत सुनह विरहि जन रे

[२८] पाखी यदि होइतहुँ पिया पास जइतहुँ दुख कहितहुँ तसु पास

शृंगार का विषय क्यों नहीं बनाया जाय? जयदेव ने मार्ग दिखाया। विद्यापति उनके पद-चिह्नों पर चल कर उनसे भी आगे निकल गये। अनेक प्रसंगों में उन्होंने जयदेव के सिवा अन्य संस्कृत कवियों का सहारा भी लिया—

बदरामलकाम्रदाडिमा 	नामपहृतश्रिममुन्नतौं 	क्रमेण।
अधुना हरणे कुचौ यतेते दयिते ते करि शव कुम्भ लक्ष्मः॥
(पं० जगन्नाथ)

पहिल बदरि कुच पुन नव रंग
दिने दिने बाढ़य पिड़य अनंग
से पुनि भइ गेल बीजक पोर
अब कुच बाढ़ल सिरिफल जोर
(विद्यापति)

दीर्घा चन्दन मालिका विरचिता दृष्टयैव नेन्दी वरैः।
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्द जात्यादिभिः
दत्तः स्वेद मुचा पयोधर युगेनार्घ्यो न कुम्भाम्भय।
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्या कृत मङ्गलम्
(अमरुक)

पिया जब आओब ई मझु गेहे
मङ्गल जतहुँ करब निज देहे
कनक कुम्भ करि कुच युग राखि
दरपण धरब काजर देइ आखि
वेदि बनाओब अपन अङ्गाने
झाडु करब ताहि चिकुर बिछाने
कदली रोपब हम गरुय नितम्ब
आम्र पल्लव तहिं किङ्किनी सुझम्प
(विद्यापति)

त्रासांसि न्यवसत यानि पोषत स्ताः शुभ्राभ्र द्युतिभिरहानि तैर्युदेव;
अत्याच्छुः स्नपन गलज्जलानि यानि स्थूलाश्रुः स्रुतिचिररोदितैः शुचेव
(माघ)

सजल चीर रह पयोधर सीमा
कनक बेलि जनि पड़ि गेल हीमा
ओ नुकि करतहि चाहे किय देहा
अबहिं छोड़व मोहिं ते जव नेहा
ऐसन रस नहिं आओव आरा
इथे लागि रोइ गलय जलधारा

(विद्यापति)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं जिनसे हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि विद्यापति के संयोग शृंगार काव्य पर संस्कृत काव्यों का प्रभाव ही नहीं है, वरन् उसका आधार ही संस्कृत काव्य है यद्यपि कितने ही स्थलों पर विद्यापति उन संस्कृत कवियों से आगे बढ़ गये हैं जिनके भाव को वे आधार बनाकर चले हैं। जो हो, वयः सन्धि, सद्यःस्नाता, मिलन, रतिरण, विपरीत रति, रत्यान्त आदि संयोग शृंगार के अन्तर्गत प्रसंगों में विद्यापति परम्परा की रक्षा करते हुए औचित्य का उल्लंघन कर गये हैं। इन प्रसंगों के पदों में भी धार्मिक भावना सुन्दरता देख लेती है, यही नहीं, उनसे भावोन्मेष प्राप्त करती है, परन्तु यह बात दूसरी है। मूल रूप में ये पद विद्यापति की शृंगारिक-प्रवृत्ति के ही द्योतक हैं। बाद में इस प्रकार की रचना की एक परम्परा ही चल पड़ी और जब विद्यापति के पद धर्म-गीतों के रूप में स्वीकृत हुए तो उन्होंने धर्म-साहित्य को भी दूषित किया एवं राधा-कृष्ण का रूप ही बदल दिया।

यदि यौन-मनोविज्ञान को सामने रख कर विद्यापति के संयोग शृङ्गार के पदों को पढ़ा जाए, तो कवि की प्रतिभा का आश्चर्यजनक परिचय मिल सकेगा। प्रेम-विह्वलता, लालसा, अतृप्ति, सम्मिलन-सुख की तल्लीनता और आत्म-विस्मृति, विलास और लज्जा-लगभग सभी दैहिक और मानसिक परिस्थितियों का वर्णन विद्यापति ने किया है। इन परिस्थियों के साथ हमारे परिचित रीति-रिवाजों का सम्मिश्रण इन पदों को और भी सुन्दर बना देता है, जैसे सखियाँ बधू को समझा-कर पतिगृह में ले जाती हैं, उधर नायक को भी समझाती हैं कि वह संयम से काम ले, प्रायः सखियाँ बधू से रात की बात पूछती हैं और रति-चिह्नों को दिखा कर उपहास करती हैं। इस भूमिका में देखने से विद्यापति का विलास-केलि-वर्णन-प्रधान काव्य उतना दूषित नहीं जान पड़ेगा, जितना समझा जाता है। जैसा हम बता चुके हैं, जीवन के इस अंग को प्राचीन काव्य उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता था, विद्यापति का दोष इतना ही है कि उन्होंने कृष्ण और राधा को विलासी नायक-नायिकाओं का रूप दे दिया जिसने परवर्ती काव्य को भद्दी रसिकता से भर दिया। इन पदों में विद्यापति की शृंगार-प्रियता और रसिकता इतने चटकीले रंगों के साथ ऊपर उभरती है कि उसे आध्यात्मिक रूपक, रहस्यवाद या लीलाकाव्य की हलकी ओट में छिपाया नहीं जा सकता। इसी रसिक-प्रवृत्ति के कारण विद्यापति ने राधा को अल्पवयसा माना है जिससे उन्हें नायिका की केलि-भीरुता, सखियों का प्रबोध, नायिका की अनुनय-विनय और नायक की उद्दंडता आदि रसपूर्ण विषय मिल जायें। प्रथम मिलन की लज्जा, उत्कंठा, भय, कातरता आदि मनोवृत्तियों से पुष्ट विद्यापति का यह काव्य भी अपूर्व है और अपने इस क्षेत्र में हमारा कवि संसार के किसी भी

कवि का लोहा नहीं मानता। सच तो यह है कि विद्यापति ने राधा-कृष्ण के मिलन और वियोग को एक खडकाव्य का रूप दिया है और जहाँ विप्रलम्भ शृंगार में सूरदास को छोड़कर हिन्दी का कोई कवि इनके समकक्ष नहीं आता वहाँ संयोग शृंगार के क्षेत्र में विद्यापति अकेले हैं। रीति-काव्य के सारे कवियों का संयोग-शृंगार-काव्य विद्यापति के सम्भोग शृंगार काव्य के सामने छोटा उतरता है।

परन्तु जहाँ मिलने के ये स्थूल वर्णन हैं, जहाँ कवि वासना की गहराइयों, यौनलिप्सा और दैहिक एवं एन्द्रिय सुख की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ अनेक ऐसे स्थल भी हैं जिनमें वह इससे ऊपर उठ गया है। ऐसे स्थलों पर यह मिलन 'मानसिक मिलन' का स्थान ले लेता है जो वैष्णवों का अन्तिम ध्येय है।

आजु रजनी हम भागे पोहायनु पेखनु पियमुख चन्दा
जीवन यौवन सफलक माननु दस दिसि भो निरद्वन्दा ॥
आजु हम गेह गेह करि माननु आजु मोर देह भेल देहा
आज विही मोर अनुकूल होयल टूटल सबहु संदेहा
सोइ कौकिल अब लाखहि डाकउ लाख उदय करु चन्दा
पाँच बान अब लाख बान हनु मलय पवन बहु मन्दा
अब सो न बबहु मोह परि होयल तबहु मानव निज देहा
विद्यापति कह अलप भागि नह धनि धनि तुम नव नेहा

यह स्थल 'मानसिक मिलन' के ही हैं; यह इस प्रकार सूचित हो रहा है कि विद्यापति ने कहीं-कहीं यह मिलन सपन में बतलाया है। 'मानसिक मिलन' और स्वप्न के मिलन में अधिक अन्तर नहीं है। वास्तव में स्वप्न आध्यात्मिक मिलन का प्रतीक लिया जा सकता है—

आयल　गोकुल　नन्द　कुमार
आनन्द　कोइ　कहइ　नहिं　पार

कि कहब हे सखि रजनिक आज
सपनहि देखलि नागर राज
आजु सुमनिसि कत पोहायनु राम
प्रान प्रिया मोहि करनु प्रनाम
विद्यापति कह सुन वर नारि
धैरज धर तोहि मिलब मुरारि

सुतुलि से आनि सुन्दरि घर गेलि
कियरे विघाता लिखि मोहि देलि
बर अनुयानि घर पैसल धाय
सूति रहल पहु दीप बराय
नींद परत सखि कयतुक मेला
भनहि विद्यापति तखनक रीति
जेहनि विरह रहे तेहन पिरीति

इस प्रकार के मिलन-आनन्दोल्लास के दर्शन विद्यापति की कविता के प्राण हैं। वे न चंडीदास में मिलते हैं, न सूरदास में। इन कवियों ने विरह-रस की अनुभूति को ही ध्येय (लक्ष्य) मान लिया है जिस प्रकार भक्तों को भक्ति ही साध्य बन गई है परन्तु विद्यापति के लिए विरह साधन है, तप है जिसका फल है प्रिय-मिलन की सिद्धि। जिस प्रकार विरह की अत्यन्त तीव्र अनुभूति से कवि लौकिक प्रेम की परिधि लाँघ कर अलौकिक को स्पर्श करता है, इसी प्रकार पुनर्मिलन के रसावेश में वह दैहिक मिलन से ऊपर उठ कर उस भाव जगत का स्पर्श कर लेता है जहाँ शरीर की दुर्बलताएँ क्षार हो जाती हैं। संक्षेप में, विद्यापति वयः संधि, स्नान, अभिसार, मान और मानोपरांत दैहिक मिलन के अवसर पर लौकिक और शृङ्गारिक हैं तो विरह और विरहोपरांत मानसिक मिलन में

अलौकिक हैं। इन स्थलों पर अनजाने ही रहस्यवाद की सृष्टि हो गई है। अन्त में विद्यापति राधा-कृष्ण के इस चित्र पर जाकर अपनी कथा को परिणति कर देते हैं—

चिर दिन सो विहि भेल अनुकूल।
पुन पुन हेरइत दुहुँ आकूल॥
बाहु पसारिय दुहुँ दुहुँ धरे।
दुहुँ अधरामृत दुहुँ मुख भरे॥
दुहुँ तन कांपय मदन वचन।
किङ्कनि शब्द जुड़ावत मन॥
विद्यापति कवि कहव आर।
जेहन प्रेम दुहुँ तेहन विहार॥

इस पद को हम क्या कहेंगे? लौकिक शारीरिक केलि तथा दैहिक तृप्ति का वर्णन या रहस्यवाद?

यह वह अवस्था है जब प्रिय अत्यन्त परिचित अत्यन्त निकट हो जाता है। जब दो तन एक-प्राण हो जाते हैं और मनुष्य लौकिक में अलौकिक की अनुभूति करता है—

दुहुन दुलह दुहुँ दरसन भेला
विरह जनित दुख सब दुर गेला
कर धरि बैठल चित्रित आसन
रमय रतन साम तरुनि रतन
बहु विधि विलसय बहु विधि रंग
कमल मधुप जिमि पावल संग
नयन नयन दुहुँ गुन दुहुँ जन गान
मन विद्यापति नागरि गोर
त्रिभुवन विजई नागर चोर

५

नायिका-भेद

विद्यापति ने अपने काव्य की रचना नायिका-भेद के आधार पर नहीं की है। यहाँ उन्होंने मौलिकता से काम लिया है। जयदेव की रचना नायिका-भेद के आधार पर ही है। उसमें राधा को क्रमशः आठों आठों प्रकार की नायिका बना दिया गया है और इस प्रकार नायिका-भेद के आधार पर एक सूत्र-बद्ध रति-खंड काव्य की सृष्टि की है। जयदेव की रचना के मूल में हरिस्मरण की भावना है परन्तु उन्होंने हरिस्मरण की एक ऐसी नवीन श्रेणी का आविष्कार किया जिसने हिन्दी के सारे मध्ययुग के कृष्ण-काव्य को प्रभावित किया। उन्होंने राधा को नायिका माना, कृष्ण को नायक और अष्ट नायिकाओं की अवस्था का वर्णन किया। उनका अर्थ केवल ताला गाना है। गीतिगोविन्दम् के आध्यात्मिक अर्थ लगाना कठिन है। परन्तु उनके बाद के कृष्ण-कवियों ने उनकी नायक-नायिका कथा में कुछ अधिकाधिक आध्यात्मिकता का पुट देने की चेष्टा की।

विद्यापति में चेष्टा अधिक प्रस्फुट नहीं हो सकी है, परन्तु उन्होंने जयदेव की शैली को भी स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने एक स्वतंत्र कथानक गढ़कर और उसे लक्ष्य में रख कर पदावली की रचना की है। अतः उसमें नायिकाओं के अष्टभेद नहीं मिलते। परन्तु कुछ पद अवश्य नायिका-भेद के उदाहरण स्वरूप उपस्थित किये जा सकते हैं:—

(१) अवनत आनन हम रहली वारलि लोचन कोरा।
पीया मुख रुचि पीवय धावल जनिसे चाँद चकोरा ।।
ततहूँ सो हठ हठि मो आमिल, धयली चरनन राखि।
मधुक मातक उड़य न पारय, तैयो पसारय पाँखि ।।
(मुग्धा)

(२) नव अनुरागिनि राधा। कछु नहि भावय वाधा ।।
मनिमय मंजिर पाय। दूरहि तजि चलि जाय ।।
जामिनि घनि अंधियार। मन मथ हेरि उजियार ।।
(कृष्णाभिसारिका)

(३) आजु पुनिमा तिथि जानि मोर एलिहु, उचित तोहर अभिसार।
देह जोति ससि किरन समाइति, के विभिनावय पार ।।
सुन्दरि अपनहु हृदय विचार

आँख पसारि जगत हम देखति के जग तुअ सनि नारि
तोंह जनि तिमिर हीत कअ मानह आनन तोर तिमिरारि

(४) लोचन अरुनि बुझलि बड़ भेद।
रैनि उजागरि गरुअ निवेद ।।
ततहि जाहु हरि न करहु लाथ।
रैन गमौलह जिनि के साथ ।।
कुच कुकुम मानवद हिय तोर।
जनि अनुराग रागि कर गोर।
आनक भूषण लागल अंग।
उकुति वेकत होम आनक संग ।।
(खंडिता)

अवनत वयनि धरनि नख लेख
जे कहे स्याम ताहि नहि पेख

अरुन वरुन पवि मिलित देख ।
अभरन तेजलि झाँपलि मेघ ॥
नीरज अरुन कमल पर वदनी ।
नयनक कोर आज गहि धरनी ॥

(वही)

(५) कि कहब हे सखि निज अगयान ।
सगरी रैइन गमाओलि मान ॥
जखन हमर मन परसन भेल ।
दारुन अरुन तखन उगि गेल ॥

(कलहान्तारिता)

आज परल मोहि कोन अपराध
छिअ न हेरि हरि लोचन आध

(वही)

(६) पथरहि अयलहुँ तरनि तरंग ।
पगु लागत कत छहल भुजंग ॥
निशिय निशाचर संचर साथ ।
मागन केओ नहिं पयलन्हि हाथ ॥
यत कय अयलहुँ जीव उपेख ।
तइतो न भेला मोहि माधव देख ॥
तनि नहिं पढ़लन्हि मदनक रीति ।
विफुन वचन कमलन्हि परतीत ॥

(विप्रलब्धा)

(७) सारे विरह-प्रबोध के छन्दों में राधा प्रोषितपतिका है। वर्तमान प्रोषित-प्रिया का चित्रण एक छन्द में मिलता है—

उठि उठि सुन्दरि जायछि विदेश ।
सपनहुँ मोर नहिं पायब उ देश ॥

उठइत उठि बैठलि मन मारि।
विरहक मातलि चुप रहे नारि॥
(पृ० १३०)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विद्यापति को नायिका-भेद लिखने का आग्रह नहीं है। उनके कथानक में नायिका की जो अवस्थाएँ आ गईं उन्होंने उन्हें ही चित्रित किया है।

यहाँ प्रश्न यह हो सकता है विद्यापति की राधा स्वकीया है या परकीया। जयदेव ने राधा को आठों प्रकार की नायिका चित्रित किया है। यह आठों प्रकार की दशाएँ स्वकीया की ही हो सकती हैं, परकीया की नहीं। जयदेव को राधा को परकीया मानने का कोई कारण नहीं था। विद्यापति के पदों से नायिका का रूप स्पष्ट नहीं है परन्तु कलहान्तारिता और विप्रलब्धा दशाएँ स्वकीया की ही होती हैं, परकीया की नहीं। अतः उनकी नायिका भी स्वकीया है। विद्यापति ने शृंगार-शास्त्र को अपनी रचनाओं का आधार माना है। राधा का परकीया-रूप चंडीदास के काव्य में मिलता है और यह सहजियों के परकीया मत का प्रभाव है जिसके कारण राधा आयण घोपाल की पत्नी मानी जाने लगी। हिन्दी कवियों ने राधा को स्वकीया ही चित्रित किया है।

६

सौन्दर्यांकन

विद्यापति सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। उन्होंने मिलन और वियोग के सुन्दर से सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं और नायक-नायिका के मन के अन्तःपुर के प्रत्येक रहस्य का सफलता-पूर्वक उद्‌घाटन किया है। परन्तु यदि विद्यापति की सौन्दर्य-चित्रण-पटुता से सच्चा-सच्चा परिचय प्राप्त करना है तो उनके द्वारा उपस्थित किये गये उनके आलम्बनों के सौन्दर्य का अध्ययन करना आवश्यक हो जायगा।

ये आलम्बन राधा-कृष्ण हैं। कवि के काव्य का एक बड़ा भाग इनके सौन्दर्य को हमारे सामने उपस्थित करता है। वयःसंधि, पूर्वराग और अभिसार के प्रसंगों में युगल दम्पति के सौन्दर्य का ही चित्रण हुआ है। यद्यपि कवि ने विरहाकुल राधा के सौन्दर्य को भी अछूता नहीं छोड़ा है, तथापि ऐसे पद कम हैं जिनमें विरह-क्षीण-कलेवरा राधा का अंकन हो।

प्राचीन संस्कृत काव्य में नखशिख लिखने की एक परिपाटी चली आती थी जिसका उद्देश्य नायक-नायिका के अंगों का क्रमशः वर्णन करना होता था। विद्यापति का अधिकांश सौन्दर्यांकन 'नखशिख' के अन्तर्गत आ जाता है। कदाचित 'नखशिख" को स्वतन्त्र रूप में वर्णन करने की रूढ़ि चलाने का श्रेय विद्यापति को ही मिले। उन्होंने कई प्रकार से नख-शिख लिखने की चेष्टा की है। इस नख-शिख के लेखन में

उन्होंने प्राचीन कवियों के काव्य से पद-पद पर सहारा लिया है और नारी के अंगों के सम्बन्ध में प्रचलित सभी काव्य-रूढ़ियों को आत्मसात् कर लिया है। परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे, उनमें मौलिकता की कमी नहीं है और उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों की सामग्री एवं काव्य-रूढ़ियों को अभिनव भूमि पर स्थापित किया है जिसके कारण उनका सौन्दर्यांकन अत्यन्त उच्च हुआ है।

आगे हम इसी विषय को स्पष्ट करेंगे।

विद्यापति के नायक-नायिकाओं का रूप अपूर्व है। कृष्ण के का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

कि कहब हे सखि कानुक रूप
के पतिआएत एखन स्वरूप
अभिनव जलधर सुन्दर देह
पीत वसन पर दामिनि रेह
सामर झामर कुटिलहि केश
काजरे साजल मदन सुवेश
जातकि केतकि कुसुम सुवास
फुलशर मन्मथ तेजल तरास
विद्यापति कह कि कहब आर
सून करल विह मदन भण्डार

इस वर्णन में प्रत्येक अंग को नहीं लिया जाता है, केवल सौन्दर्य की व्यञ्जना की गई है। हाँ, दृष्टिकूट के पदों में अवश्य प्रत्येक अंग का उल्लेख है—

ए सखि कि देखल एक अपरूप। सुनइते मानबि सपन सरूप॥

कमल जुगल पर चांदक माल। तापर उपजत तरुण तमाल ॥
(चरण) (नाखून) (जंघायें)
तापर बेढ़ल बिजुरि लता। कालिंदी तीर धीर चलि जाता ॥
साखा सिखर सुधाकर पांति। ताहि नव पालव अरूनक भाँति ॥
(हाथ) (अंगुलियाँ) (नाखून)
विमल बिम्ब फल जुगल विकास। तापर कीर थीर करु वास ॥
(अधर) (नाक)
तापर चञ्चल खञ्जन जोड़। तापर साँपिनि झांपल मोड़ ॥
(अलक)
ए सखि रङ्गिम कहत निसान। पुन हेरइते हम हरल गेआन ॥
भनइ विद्यापति इह रस भान। सुपुरुष मरम तहू भल जान ॥

परन्तु कृष्ण का रूप-वर्णन इतना नहीं है, जितना राधा का। कवि ने उसे भिन्न भिन्न अवस्थाओं में चित्रित किया है।

हरि हरि विलपि विलापिनि रे लोचन जल धारा।
तिमर चिकुर घन परसल रे जनि विजुल अकारा ॥
नील वसन तन बाँधत रे, उर मोतिक हारा।
सबल जलद कत झाँपत रे डगमग करु तारा ॥
(विरहिणी)

(२) कुसुम बान विलास कानन केस सुन्दर रेह।
निविढ़ नीरद रुचिर दरसए अरुन जनि विश्र देह ॥
आजु देखु गजराज गति वर जुवति त्रिभुवन सार।
जनि कामदेवक विजय वल्लो विहलि विहि संसार ॥
सरस ससधर सरिस सुन्दर बदन लोचन लोल।
विमल कञ्चन कमल चढ़ि जनि खेल खञ्जन जोल ॥
(युगल)

अधर पल्लव नव मनोहर दसन दाड़िम जोति।
जनि विमल विद्रुम दल सुधा रस सोचि धरु गजमोति ॥
मत्त कोन्डिल वेनु बीना नाद त्रिभुवन आस।
मधुर हास पसाहि अमिल करए बचन विलास ॥
अमर भूधर सम पयोधर महध मोतिम हार।
जनि हेम निर्मित सम्भु सेखर अङ्क निम्मल धार ॥
करभ कोमल कर सुसोभित जङ्घ जुअ आरम्भ।
मदन मल्ल वेश्राम कारने गढ़ल हाटक थम्भ ॥

(२) दृष्टिकूट के रूप में

माधव कि कहब सुन्दर रूपे।
कतेक जतन विह आनि समारल, देखलि नैन सरूपे ॥
पल्लवराज चरण जुग सोभित गति गजराजक माने।
(राग) (गति)
कनक कदलि पर सिंह समारल, तापर मेरु समाने ॥
(जंघा) (कटि) (शरीर-यष्टि या वक्ष)
मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तइँ नहिं कमल सुखाई ॥
अधर बिम्ब सन दसन दाडिम बिजु रवि-ससि उगथिक पासे।
राहु दूर बसु निअरो न आवथि तइँ नहिं करथि गरासे ॥
सारंग नयन वयन पुन सारंग सारंग तनु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधु पाने ॥
(कमल) (भ्रमर)

(ख) 'साइति देखलि पथ नागरि आगरि सुबुधि सेआनि
कनकलता सुनि सुन्दर विह निरमाओल आनि
हस्ति गमन जकाँ चलइत देखइति राजकुमारि
जनि कर एहन सोहागिनि पाओल पदारथ चारि

इस प्रकार के नारी-सौन्दर्य के उद्घाटन में विद्यापति ने जिस परम्परागत एवं नवीन उपमाओं को प्रयोग किया है, उनको हम इस प्रकार रख सकते हैं—

१ मुख

चन्द्रमा (शशि, निशाकर आदि)[1], कनक मुकुर[2], कमल[3]। चन्द्रमा का प्रयोग कई रीति से किया है जैसे कलंकहीन चन्द्रमा (हरि विहीन हिम धाम[4])।

२ अधर

विम्बफल[5], प्रवाल[6], मधुरिफुल (वन्धुक या बान्धुलि= दुपहरिया का फूल[7]), राग[8], विद्रुम-पल्लव[9]।

३ दशन

दाडिम विजु (करक बीज[10]), मुक्ता[11], कुन्द[12], गजमोति पाँति[13], (पाँति वइसल गज-मोति) मणी[14]

---

१ कनक मुकुर,[1] शशि,[2] कमल[3] जिनिय मुख
अपरूप पेखली रामा
कनक लता अवलम्बन ऊयल हरिनि हीन हिम[4] धामा

२ जिनि बिम्ब[5] अधर प्रवाले[6]
मुख रुचि मनोहर अधर सुरंग
फूटल बान्धुलि कमलक संग
अधर राग[8] विद्रुम नव पल्लव[9]

३ दसन दाडिम[10] बिजु
दसन मुकुता[11] पाँति
दसन मुकुता, जिमि कुन्द,[12] करग बिज
पाति वरसल गजमोति रे[13]

४ सिंदुर

रवि[१९]

५ केश (वेणी या कमरी या कुंतल)

राहु[१६], फणि[१७], भृंग[१८], शैवाल[१९], चमरी (मृग)[२०], तम[२१]। बँधी वेणी की उपमा मदन के चाबुक (मदनसाटी) से की गई है। यमुना[२२] को भी उपमान माना गया है[२२] (क)। जलधर भी कहा है[२२] (ख)

६ नयन

सारंग (हरिण)[२३], चकोर[२४], कुरंगिनि[२५], नलिनि[२], सफरि[२७], मधुकर[२८], भृंगि[२९], खंजन [३], जोति[३१], भृंग[३२], काजल साजर मदनुधनु[३३], कमल[३४], नवजलधर[३५], कुवलय[३६]

---

४ रवि[१९] ससि उगथिक पासे

५ राहु[१६] दूर बसु, नियरे न आवथि
भ्रमर[१८] उपर फणि[१७]
जलधर,[२२] (ख) तिमिर,[२१] चामर[२०] जिनि कुन्तल अलक
भृङ्ग,[१८] शैवाल[१९]
आइलि निकट चाटे छुअलि मदन साटे[२२]

६ सारँग नयन[२३]
नलनि[२६] चकोर[२४] सफरि[२७] वर मधुकर,[२८] भृंगि[२९]
खंजन[३०] जिमि आँख
एक कमल दुइ जोति[३१] रे
लोचन युगल भृंग[३२] आकार
काजल साजर मदनु धनु[३३]
करी उपरि कुरङ्गिनि[२५] देखलि

७ वाणी

सारंग[३७] (कोकिला)

८ ललाट

सारंग (कमल)[३८]

९ ललाट की केशराशि (कुन्तल)

सारंग (भ्रमर)[३९], जलधर[४०], तिमिर[४१] चामर[४२]

१० शरीर

कनक मुकुर[४३]

११ कटि के ऊपर का शरीर

मेरु[४४]

१२ शरीर-यष्टि

कनकलता[४५], तड़ित-दंड[४६] हेम मंजरी[४७], बिजली-रेह (बिजली की रेखा[४८], द्रोणलता[४९])

---

७ वचन पुनि सारंग[३७]

८ सारंग[३८] उपर उगल दुई सारंग[३९]

९ जलधर[४०] तिमिर[४१] चामर[४२] जिमि कुन्तल

१० माजि धूमल जनु कनक मुकुर[४३]

११ मेरु उपर[४४] दुइ कमल फुलायल

१२ अमल तडित दंड[४६] हेम मंजरी[४७] जिमि अति सुन्दर देहा

कनकलता[४५] अवलम्बन अयल

सघन परस लघु अम्बर रे देखल धनि देह

नव जलधर तरे सञ्चर रे जनि बिजुरी रेह[४८]

१३ नाक

कीर[६०], तिलकुल[६१], खगपति-चंचु (गरुड़-चंचु)[६२]

१४ भ्रू

लता[६३], धनु[६४], भ्रमर[६५], भुजंगिनि[६६], अर्द्धचन्द्र[६७], कमान[६८], मदन[६९], चाप[६०]

१५ कपोल

जल बिना अरबिन्दा[६१], द्वितीय का चन्दा[६२]

१६ कंठ

कम्बु[६३]

१७ कटाक्ष

मदनसर[६४]

१८ काजर की रेखा

काली भुजंगिनि[६५]

---

१३ कीर[६०] उपर कुरंगिनि देखल
नासा तिलकुल[६१] गरुड़ चच्चु[६२] जिमि

१४ मालता[६३] धनु[६४] भ्रमर[६५] भुजंगिनी[६६] जिमि आध विधुवर[६७] भाले
काजल साजल मदन धनु[६९]

१५ एक असम्भव आउर देखलि जल बिना अरबिन्दा[६१]
बेवि सरोरुह उपर देखलि जइसन दूतिय चन्दा[६२]

१६ काम कम्बु[६३] भरि कनक शम्भु परि ढारत सुरधुनि धारा

१७ तिन बान मदन[६४] तेजल तिन भुवने अवधि रहल दमो बाने ।
विधि बड़ दारुन बधए रसिक जन सोंपल तोहर नयाने ॥

१८ सुन्दर बदन चारु अरु लोचन काजर रंजित भेला ।
कनक-कमल माँझ काल-भुजंगिनि[६५] स्रीयुत खंजन खेला ॥

१६ नेत्र पट

मयुर के पंख[६८] (पाख)

२० भुज (बाहु)

कनक मृणाल[६७], हेम कमल[६८], मिहिर (सूर्य)[६९], पंकज[७०]

२१ जुड़ी हुई भुजाएँ

दाम चम्पक (चम्पक माल)[७१]

२२ स्तन (पयोधर)

कमल,[७२] चकोर,[७३] श्रीफल,[७४] तालयुग,[७५] हेमकलस,[७६] गिरि,[७७] उलटा कनक कटोरा (पलट बैसाइल कनक कटोरा[७८]) कमल कोरक,[७९] घट,[८०] दाड़िम,[८१] शम्भु,[८२] कंचनगिरि,[८३] बदरि,[८४] नवरंग,[८५] बड़ा नीबू[८६] (बीजक पोर), कनक-महेश,[८७] सुमेरु,[८८] उज्ज्वल स्वर्ण,[८९] कनक कमल,[९०] कुंभ,[९१] हे नलिन[९२]

---

१६ भुज भय कनक मृणाल बंक रहु[६७]
बाहु मृणाल[६७](क) पास[६७](ख) बलतरि जिनि[६७](ग)

२० कर भय किसलय काँपे
बार जुग विहित पयोधर अचंल
चंचल देखि चिल भेला ।
हेम कमल[६८] जनि अरुणित चंचल
मिहिरतले[६९] निन्द गेला ॥

२१ जोरि भुज जुगु भोरि वेढ़ल ततहि बदन सुछन्द ।
दाम-चम्पक[७२] काम पूजल जइसे सारद चन्द ॥

२२ मेरु उपर दुइ कमल फुलायल
कुच युग चारु चकेवा[७४]

२४ उदर

चन्द्रधनु (चांदक मंडल)[९३]

२५ लोमलतावलि

शैवाल,[९४] कज्जल,[९५] मन्मथ-धनु,[९६] भुंजगिणी[९७]

२६ त्रिवली

तरंगिणी की तरंगलीला,[९८] लता,[९९] यमुन-तरंग[१००]

२७ नाभि

सरोवर,[१०१] सरोरुह दल,[१०२] विवर[१०३]

२८ कटि

सिंह (केसरी[१०४]), डमरु[१०५]

बेल[७४] ताल युग[७५] हेम कलस[७६] गिरि[७७]
पलट बैसाइल कनक कटोरा[७८]
कुच भय कमल कोरक[७९] जल मुँदि रहु
कुच कुम्भ[८०] कहि गेल आपन आस
(कुचभय) दाड़िम[८१] सिरिफल गगन वास कर सम्भु[८२] गरल करु आरे

२४ कुच कञ्चन गिरि[८३] सखि
पहिलि बदरि[८४] अब पुनि नवरंग[८५]
अब कुच बाढ़ल बीजक पोर[८६]
२५ लोम लतावलि शैवल[९४] कज्जल[९५] त्रिवलि तरंगिणी-रङ्गा
२६ त्रिवलि तरंगिणी रङ्गा[९८]
२७ नाभि सरोवर,[१०१] सरोरुह दल[१०२] जिमि
२८ डमरु[१०४] सिंह[१०५] जिमि माझा

२९ नितम्ब

गजकुम्भ[१०६]

३० जंघा

कनक कदलि[१०७], कदली[१०], करिवर-कर[१०९], विपरीति कनक-कदलि[११०]

३१ गति

गजराज,[१११] राजहंस[११२]

३२ पद तल

अचल अरुन,[११३] स्थल पकंज,[११४] पल्लवराज[११४] क

३३ पद-नख (करतल-नख)

शशि की मंडली,[११५] दाड़िम विजु,[११६] इन्दु [११७] रतन[११८]

---

२९ नितम्ब जिनिय गंज कुम्भा[१०६]

३० कदली[१०७] उपरि केशरि देखलि

उरुयुग कदली[१०८] करिवर कर जिनि[१०९]

विपरित कनक कदलि[११०] तट सोभित थल पंकज ये रूप रे

३१ गति गजराजक[१११] भाने

करिवर राजहंस[११२] गति गामिनि

३२ अचल अरुण[११३] जनु ससि के मंडल भीतर रहइ लुकाय

थल पंकज[११४] के रूप रे

स्थल पंकज[११४] पद पाणी

पल्लवराज[११४]क चरण जुग सोभित

३३ अचल अरुन जनु ससि के मंडल[११५] भीतर रहइ लुकाय

नख दाड़िम विजु[११६] इन्दु रतन जिमि

३४ रूप

मधु[119]

३५ तनु-रुचि

हिमद तुषार,[120] सिरिसि कुसुम[121]

३६ तन गंध

परिमल[122]

३७ अंचल (नील)

बलाहक (मेघ)[123]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक उपमानों के भीतर से विद्यापति की नायिका का अनुपम सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। इस नायिका का मोहन रूप इस प्रकार है—

वर्ण गौर है या हेम, देह लम्बी, संगठित, दुबली-पतली, शरीर पुष्ट, कटि क्षीण, नितम्ब गुरु; पयोधर अवस्थानुसार

---

३४ पिअइ रूप-मधु[119] मातल भृङ्ग

३५ हिमद तुषार[120] सरिस तनु शोभा
तनु-रुचि सिरिस कुसुम[121] सम जान

३६ तन-सुगन्ध मधुर परिमल[122] बास

३७ आध बदन बिहँसि देखाओल
आध पीहलि निअ बाहू।
किछु एक भाग बलाहक[123] झापल
किछुक गरासल राहू॥

छोटे बड़े; बाल काले, लम्बे। वह नीला वस्त्र पहनती है। उसके गले में मोती का हार है। यह हार कहीं श्वेत मोतियों का है, कहीं लाल।

कवि नायिका के खुले हुए अङ्गों (स्तन मुख) को देखता है, परन्तु कभी-कभी उन्हें नील आवरण में छिपा कर भी देखता है। अपनी इस नायिका के सौन्दर्य को कवि ने अनेक अवसरों पर और अनेक भङ्गिमाओं से देखता है—

(१) गेल कामिनि गजहुँ गामिनि विहसि पलटि निहारि।
इन्द्र जालक कुसुम सायक कुहुक मेलि वर नारि॥
जोरि भुज युग मोरि बेढ़ल ताहि बयन सुछन्द।
दाम चम्पक कान पूजल जैसे साइद चन्द॥

गजगामिनी कामिनी आगे बढ़ी; उसने मुड़कर देखा, इस भङ्गिमा में वह इतनी सुन्दरी हो गई कि उसने एन्द्रजालिक कामदेव को भी मोहित कर दिया। उसने अपने दोनों हाथों को मिलाकर मस्तक को वेष्टित किया। ऐसा जान पड़ता था मानों कामदेव शरद् चन्द्रमा की पूजा चम्पक माला से कर रहा हो अर्थात् उस पर चम्पकमाला चढ़ा रहा हो

(२) आध आँचर खसि आध बदन हँसि आधहि नयन तरंग।
आधउ एजन हेरि आध आँचर भरि तग धरि'दगध अनंग॥

आधा अंचल खसकाया, स्मिति हास्य किया, आधा ही वंकिम कटाक्ष किया। आधा स्तन अंचल से ढका है, आधा खुला है। यह जब से देखा है तभी से काम-ताप से प्राण दग्ध हो रहा है।

(३) कामिनि करए सनान, हेरइत हृदय हनय पँच बान।
चिकुर गलय जलधारा, मुख ससि भअ जनि रोअय अँधारा ॥
तितिल वसन तनु लागी, मुनिहु के मानस मनमथ जागी।
कुच जुग चारु चकेवा, निज कुल आनि मिलायल देवा ॥
ते सबै भुज पासे, बाँधि धयल उड़ि जायत अकासे।

(कामिनी स्नान कर रही है। उसे देखते ही कामदेव हृदय को वेधित करता है। वेणी से जलधारा गिर रही है जैसे मुख शशि से भयभीत अन्धकार रो रहा हो। गीला वस्त्र शरीर से लिपट गया है उसको इस अवस्था में देखने पर मुनियों के हृदय में भी काम जाग उठेगा। कुचों के ऊपर हाथ दिये हुए हैं। कवि उत्प्रेक्षा करता है—देवता ने चक्रवाक के जोड़ों को सरिता भुला कर मिला दिया है। इस भय से कि कहीं आकाश में न उड़ जाएँ, कवि ने उन्हें भुजपाश में बाँध रखा है।)

(४) जाइत पेखली नहाइल गोरी।
कति सौ रूप धनि आनलि चोरी ॥
केस नेगरइत बहै जलधारा।
चामरे गले जनि मोतिम हारा ॥
अलकहिं तीतल तहिं अति शोभा।
अलि कुल कमले वेढ़ल मधु लोभा ॥

(नहा कर गोरी को जाते हुए देखा। इतना रूप यह कहाँ से चुरा लाई है। केश से निकल कर जल-धारा बह रही थी। जैसे चमर से मोती का हार पिरो दिया गया हो। भीगी अलकों से उनकी शोभा और भी बढ़ गई जैसे मधु के लोभ से भ्रमरों ने कमल-मुख को घेर लिया हो)

(५) जब गोधूलि बेखली भेली, धन मन्दिर बाहर भेली।
नव जलधर बीजुरि रेहा, दन्द पसारिय गेली ॥

(गोधूली के समय में उस बाला के बाहर आने से ऐसा ज्ञान पड़ा जैसे मेघमाला में चंचला चमक पड़ी हो। वह प्रकाश-अन्धकार का द्वन्द्व फैलाती हुई चली।)

(६) अलखित हमें हेरि विहुंसलि गोरि।
जनु रजनी भेल चान्द उजोरि॥
कुटिल कटाख छटा परि गेला।
मधुकर डम्बर अम्बर भेल॥

अलक्षित भाव से उसने मुझे हँस कर देखा जैसे रजनी में चाँद का उजाला हो गया हो। कुटिल कटाक्ष की शोभा प्रकाश होती है, इन्दीवर-विकास के भ्रमर-पुञ्ज आकाश में छा गया।

(७) अम्बर खसि अचानिक कामिनि कर कुच झाँप सुछन्दा।
कनक सम्भु सम अनुपम सुन्दर दुइ पंकज दस चन्दा॥

अचानक ऐसा हुआ कि अंचल खस पड़ा परन्तु कामिनी ने अत्यन्त शीघ्रता से कनक शम्भु के समान अनुपम सुन्दर पयोधरों को दोनों हाथों से ढक लिया।

(८) नतुया नयनि जनि अनुपम बङ्क निहारई थोरा।
जानि शृंखल में खगवर बाधर दिठहु लुकायल भोरा॥
आव वदन ससि विहसि देखा बलि आज ढकल निज बाहू।
किछुयक भाग वलाहक झाँपल किछुयक ग्रसल राहू॥

नवीन नलिनी जैसी अनुपम आँखों से उसने कुछ-कुछ बंकिम चितवन कर के देखा। परन्तु जैसे ही मैंने उसे देखा उसने उन खगों (नयनों) की शृंखला (जंजीर) में बाँध लिया और मुझसे छिपा गया अर्थात आँखें बंद कर लीं। उसने अपने

चन्द्रमा जैसे मुख को आधा बाहुओं से ढक लिया और आधा मुख मुस्कराते हुए खुला रखा। फिर उसे भी नीलांचल की ओट में कर लिया तथा उसके काले केश अर्द्ध भाग पर आ पड़े। मानों चन्द्रमा के कुछ भाग पर मेघ छा गये हों, कुछ को राहु ने ग्रसित कर लिया हो ')

(९) खूललि कवरि अवनत आनन कुच परसय पर चारी
काम कमल लय कनक सम्भु जिनि पूजल ढारी ॥
पलटि हेरिलउ पेयासि बयस मदन सपथ तोन रे।

(बाल खुल गये। मुख नीचे की ओर है। कुच दिखलाई पड़ते हैं। कवि उत्प्रेक्षा करता है—मानों कामदेवता हाथ में कमल लेकर पूजाभाव से शंकर पर चढ़ाता हो। तुम्हें मदन की शपथ, उठ कर उस नव वये वाली प्रेयसि को देख तो।)

(१०) कर किसलय सयन रचइत गगन मंडल पेख।
जनि सरोरुह अरुन सूतल विरोध उपेख ॥
नव जलद जनु नीर बरिसय नयन उज्जल तोर।
जनि सुधाकर करें कलवित अमिय नयन चकोर ॥
कहु कमल बदनी
कमन पुरुसे हर आराधिअ जसु कारन तोहँ छिनी।
उतंग पीन पयोधर ऊपर लखिअ अधर छाया।
कनक गिरि पवार उपजल वायु मनोभव माया ॥
तो पुनु से नारी विरहे भामरी पलटि परलि वेनी।
साँस समीरन पिवय धाउलि जनि से कारी नागिनी ॥

(नायिका कर-पल्लव की शय्या बना कर अर्थात् करतल पर कपोल दिये लेटी है जैसे बालरवि पर कमल सोया हो, विरोध नहीं मानता हो। साधारणतः सूर्योदय पर कमल जाग

जाता है, यहाँ सोता रहता है, अतः विरोध है। उज्ज्वल नेत्र नये मेघों की तरह नीर बरसा रहे हैं जैसे चकोर अमृत उगलता हो और चन्द्रमा उसे पीता हो। मुख पर आँसू की बूँद पड़ी है, अत: कवि इस प्रकार का विरोध दिखलाता है। हे कमलवदनी, कह, किस पुरुष के प्रेम के कारण तू इतनी क्षीण हो रही है। ऊँचे बड़े पयोधर पर लाल होठों की छाया पड़ रही है जैसे कामदेव की माया से पहाड़ पर मोती उत्पन्न हो गया हो। तू विरह से इतनी मलीन और दुर्बल है कि वेणी जो मुँह के आगे आ पड़ी है, नहीं हटा सकती। जैसे वह काली नागिनी साँस-रूपी समीरण को पीने आई हो।)

कवि की सौन्दर्य-भावना इतनी बढ़ी हुई है कि वह दुःख पूर्ण अवस्था में चित्रित करते हुए भी नायिका के सौन्दर्य को भुला नहीं सकता। वास्तव में उसने नायिका के दुःख में सौन्दर्य देखा है। ऐसे स्थल कृष्ण-काव्य में कम मिलेंगे क्योंकि यह कवि-भक्त नायिका के दुःख-सुख से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके ही तब लेखना आगे बढ़ाता है।

संक्षेप में, विद्यापति ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय प्रेम एवं सौन्दर्य का कवि है। वह उपमाओं और अलंकारों के बिना चित्र सजा सकता है, परन्तु उसे सौन्दर्य से अत्यन्त प्रेम है, अतः अनेक प्रकार से उसे पुष्ट करता है—

१—एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का काम करती है। एक इन्द्रिय के गुण द्वारा सौन्दर्य को पूर्णरूप से प्रकट न कर सकने के कारण कवि दूसरी इन्द्रिय से उसे पकड़ना चाहता है जैसा अंगरेजी के रोमांटिक कवि करते थे।

उदाहरण के लिए—

लखलि ललित बाहु गात रे
मन भेला परखिय पात रे

(उस सुन्दर बदन को देखकर ऐसा अनुभव हुआ मानों मैं कमल-पत्र छू रही हूँ—राधा की उक्ति दूती से)

अत्यन्त उच्च कल्पना करता है—

तनु परसल विन्दु रे
नेउछि नहाउल सुनखत इन्दु रे

(श्रमकण युक्त मुखमंडल दीखता है, मानों तारागण वेष्टित चन्द्र हो ।)

चाँद सार लए मुख रचना करि लोचन चकित चकोर ।
अमिय धोय आँचरे जनि पोछल दह दिस भेल उँजोर ।
कमिनि कोने गढ़लि

(आश्चर्य है इस कामिनी को किसने बनाया । चन्द्रमा की सुन्दरता का सार लेकर तो मुख की रचना की गई होगी, आँखें जैसे चकित चकोर हों । उसने पानी से, जैसे अमृत से, मुँह धोकर जैसे ही अपने अंचल से पोंछा, वैसे ही दसों दिशाओं में उजाला फैल गया ।)

चिकुर गलय जल धारा
मुख ससि भय जनि रोअय अँधारा

(बालों से जलधारा गल कर गिरती है । ऐसा लगता है मानों चन्द्रमा के भय से दुःख पाकर अन्धकार रो रहा है ।)

कुच जुग चारु चारु चकेवा ।
निअ कुल आनि मिलायल देवा ॥
तें ऐसे भुज पासे
बांधि धयल उड़ि जायत अकासे ॥

(कवि स्नान करती हुई कामिनी का वर्णन कर रहा है ।)

सजल चीर रह पयोधर सीमा ।
कनक बेलि जनि पड़ि गेला हीमा ॥
ओ नुकि करतहि चाहे किए देहा ।
अबहि छोड़त मोहि तेज न नेहा ॥
एसन रस नहिं पाउब आरा ।
इये लगि रोइ गलय जलधारा ॥

(पयोधरों के किनारे वस्त्र जल से भीग कर चिपक गया है मानों कनक-बेलि पर हेम का पाला पड़ गया हो। इस डर से कि कामिनी स्नेह छोड़कर अभी मुझे अपने से अलग न कर दे, वसन सुन्दरी की देह को छिपने का स्थान समझ कर लुक रहा है अथवा उसके शरीर में अपना शरीर लुकाना चाहता है।)

मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल नाल विना रुचि पाई ।
मणिमय हार धार बहु सुरसरि तें नहिं कमल सुखाई ॥

(छाती पर दो स्तन हैं जैसे मेरु के ऊपर दो कमल खिले हों। वे मृणालहीन ही शोभा पाते हैं। वे इसलिये सूख नहीं पाते कि सदैव गंगाजल में तैरते रहते हैं। मणिमय हार ही गंगा है।)

नयन नलिनी दउ अंजन रंजइ, भाङ्ग-विभाङ्ग विलास
चकित चकोर जोर विधि बाँधल केवल काजर पास ॥
गिरिवर गरूय पयोधर परशित, गीय गजमोतिक हारा ।
काम कम्बु भरि कनक शम्भु परि ढारत सुरधुनि धारा ॥

(उसके कोमल से दो नेत्र हैं जिनमें अंजन लगा है, भ्रू-भंग बंकिम हैं। लगता है जैसे ब्रह्मा ने चंचल चकोर के जोड़े को केवल काजर के पाश से बाँध दिया है। गिरि-गुरु पयोधरों

को छूता हुआ गले से मुक्ताहार लटकता है मानो कामदेव शंख में गंगाजल भर कर सोने के शिव पर चढ़ा रहा हो।)

शैशव छोड़ल शशि मुख देह। खत देइ तेजल त्रिवलि त्रिरेह

(शिशुता ने उस चन्द्रबदनी की देह को छोड़ दिया और त्रिबली की राह से निकल भागा, जिससे उस समदेश में तीन रेखाएँ पड़ गई।)

उरहि अंचल झाँपि चंचल अध पयोधर हेर।
पवन प्रभाव शरदघन जनि वे बेकत कमल सुमेर॥

(पयोधर को कुछ खुला हुआ पाकर वह हृदय पर अंचल ढाँप लेती है जैसे पवन से प्रताड़ित हो शरद के मेघ सुमेरु पर खिले हुए कमल को मूँद दें।)

गुरु नितम्ब परे चलइन पारय माझा खनिय निमाई।
भांगि जाइति मनसिज धरि राखलि त्रिवली लता अरुझाई॥

(नितम्ब गुरु हैं, चल नहीं पाती; क्षीण कटि कदाचित् पयोधरों के बोझ से टूट जाती परन्तु कामदेव ने त्रिबली की लता से उसकी कटि को देह-यष्टि से इस प्रकार कस कर बाँधा है कि टूट नहीं पाती।)

कुटिल कटाक्ष छटा परि गेला।
मधुकर अम्बर डम्बर भेला॥

(कुटिल कटाक्ष के शोभा प्रकाश होते ही, 'इन्दीवर विकास होगा' इस भ्रम से भ्रमर-पुंज आकाश में छा गये।)

अगर पेखलि कुच जुग माँझ लोलित मोतिम हार।
कनक महेश काम हू पूजल जनु सुरसरि वर धार॥

(दोनों कुचों पर अगरु का लेप है. बीच में मोती-हार विहार कर रहा है जैसे कामदेव गंगाधारा को शिव के शरीर पर चढ़ा कर उनकी पूजा कर रहे हों।)

लघु लघु संचर कुटिल कटाच्छ ।
दुअउ नयन लख्यक होय लाछ्छ ॥
नयन वचन दुइ उपमा देल ।
एक कमल-दुइ खंजन खेल ॥

(दोनों आँखें धीरे-धीरे चल कर एक ही साथ वंकिम कटाक्ष करती हैं। दोनों नेत्रों के साथ मुख को उपमा उस समय इस प्रकार दी जा सकता है—मानो एक कमल पर दो खंजन विहार कर रहे हों।)

हार चुनी चुनिहार जे गांथल केवल तारु जोति ।
अधर सरूप अनूपम सुन्दर चान्द पहरिल मोती ॥
मधुकर मधुदिवि पिवि मातल छिछिरै भीजल पाँख ।
अलपे काजर लोचन आंजल ननुमि देखिए आँख ॥

(मोतियों को गूँथ कर हार बनाया वह ऐसा जान पड़ता है जैसे ज्योतिमय नक्षत्रमाला हो, उस अनुपम अधर वाली नायिका ने वह हार जब पहरा तो लगा जैसे चन्द्रमा ने मोती माला धारण की है। आँख में थोड़ा-थोड़ा कज्जल लगा है, प्रेमाश्रु बहने लगे हैं मानो मधुप मधुपान करके मत्त हो गये या उनके पंख ओस से भीग रहे हैं और वह उड़ नहीं पाते।)

खललि कबरी अवनत आनन कुच परसय पर चारी ।
काम कमला लय कनक सम्भु जिनि पूजल हारी ॥

(चोटी खुल गई है और मुख नीचा है, अतएव उलझा हुआ बाल कुच को छू रहा है और मुख कुच की ओर झुका है, मानो कामदेव कमल का कनक शम्भु पर अर्चना-हेतु छोड़ रहे हैं।)

कोमल कनक के आ मुनि पात ।
मसि लय मदन लिखत निज बात ॥

पढ़हिं सकत ना आखर पांति।
हेरइत पुलकित हो तनु कांति॥

(कवि रोमावली के लिये कहता है—कोमल कनक-कदली के पत्र पर मदन ने मसि लेकर अपनी बात लिखी परन्तु जब लिख चुका और पढ़ने लगा तो शरीर की कांति को मुग्ध होकर देखता ही रह गया, पुलकित हो गया। अक्षर कौन है, कहाँ है, कुछ न सूझा। अपना लिखा आप ही न पढ़ सका।)

३—प्राचीन काव्य-प्रसिद्धियों द्वारा प्रभाव का वर्णन करके सौन्दर्य की व्यंजना करता है—

जहँ जहँ पद युग धरई।
तहिं तहिं सरोरुह भरई॥
जहँ जहँ झलकत अङ्ग।
तहिं तहिं बिजुरी तरङ्ग॥
कि हेरिलो अपरुब गोरी।
पैठल हिय मँह मोरी॥
जहँ जहँ नयन विकास।
तहिं तहिं कमल अकास॥
जहँ लघु हास संचार।
तहिं तहिं अमिय विकार॥
जहँ जहँ कुटिल कटाक्ष।
तहँहि मदन सर लाक्ष॥

(जहाँ-जहाँ वह युगल चरण धरती है, वहाँ-वहाँ जैसे सरोवर कमलों से भर जाता है। जहाँ-जहाँ (नील जलराशि पर) अंग की कांति झलक रही है वहाँ-वहाँ जैसे बिजली की तरंग लहर गई हो। हे अपूर्व गोरी, तूने मुझे कैसे देखा कि तू मेरे हृदय में ही पैठ रही। जहाँ-जहाँ तेरे कटाक्ष पड़ते हैं, वहाँ-

वहाँ जैसे कमल विकसित हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ तेरा हास फैल जाता है, वहाँ-वहाँ जैसे अमृत की वर्षा हो जाती हो। जहाँ-जहाँ तेरा वंकिम कटाक्ष पड़ता है, वहाँ-वहाँ कामदेव के बाण का प्रहार होता है।)

यह स्पष्ट है कि विद्यापति अपनी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के लिये प्राचीन परम्परा से बहुत कुछ उधार लेते हैं। अत्यन्त परिश्रम के साथ वे सबसे प्राचीन और सुन्दर साम्य खोजकर प्रकाशित करते हैं। उनका काव्यज्ञान और पांडित्य इस दशा में उनका विशेष सहायक है। ये उपमाएँ आदि प्राचीन हैं परन्तु विद्यापति ने नये आविष्कारों द्वारा उनमें नूतनता उत्पन्न कर दी है, जैसे

जनु इन्दीवर पवने ठेलिल, अलि-भरे उलटाय

(राधा की आँखें कमलवत हैं। परन्तु उसकी पुत्तलिका अलि है जो पवन के ठेलने पर एक ओर हो गया है। यह राधा की वंक दृष्टि (लीला-दृष्टि) को इंगित करता है।)

लोचन जनु थिर भृङ्ग आकार
मधु मातल किए उड़ये न पार

(इसमें राधा की प्रिय-चिंतन-रत स्थिर दृष्टि की अभिव्यंजना है।)

नीरे निरजन लोचन राता
सिन्दुरे भाडित जनु पंकज पाता

(यह राधा के नेत्रों का उस समय का दृश्य है जब उसकी आँख स्नानोपरांत लाल हो गई हैं।)

हमारे देश के कवियों ने नायक-नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य का बड़ा ही चमत्कारिक वर्णन किया है। प्रेमी-प्रेमिका के विभिन्न

मनोभावों को उनके नेत्र किस प्रकार प्रकट करते हैं, यह विद्यापति के काव्य में अपूर्व रीति से वर्णित है। इनके काव्य का एक बड़ा भाग "चंचल नयने बंक निहारनि" का इतिहास है। वर्णन-सम्बन्धी पदों में विद्यापति अत्यन्त सजीव मूर्तिमत्ता का प्रयोग करते हैं। सारे हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की इतनी प्रौढ़ मूर्तिमत्ता के दर्शन नहीं होते। इस प्रौढ़ता के पीछे संस्कृत का सारा साहित्य तो है ही, मिथिला-राजाश्रय की कविता का पांडित्यपूर्ण वातावरण भी कम कारण नहीं है। विद्यापति के गीत-काव्य की भाषा उच्च श्रेणी की अलंकारिक भाषा है। चंडीदास की निरालंकारिक भाषा-शैली चाहे कितनी ही अनुभूति-पूर्ण क्यों न हो, वह रसिक काव्य-पंडितों को इतनी मोहित नहीं कर सकती जितनी विद्यापति की भाषा कर सकती है।

७

विद्यापति के साहित्य का काव्य-पक्ष

विद्यापति के साहित्य में साहित्य की मात्रा सूरदास को छोड़कर अन्य सभी कृष्ण-कवियों से बढ़ी-चढ़ी है। सूरदास के काव्य का एक धार्मिक पहलू भी है, परन्तु विद्यापति के काव्य में ऐसी कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। उसकी लोकप्रियता के दो कारण हैं :

(१) उसका काव्यपक्ष अत्यन्त परिपुष्ट है। और (२) बंगाल में चैतन्य के द्वारा उनके पदों का प्रयोग आध्यात्मिक अनुभूति की प्राप्ति एवं उसके स्पष्टीकरण के लिये हुआ था और अब वे गौड़ीय वैष्णवों की सम्पत्ति हो गई हैं। सुदूरपूर्व में विद्यापति के प्रचार का श्रेय श्री गौराङ्ग महाप्रभु को ही मिलना चाहिए।

इस अध्याय में हमें विद्यापति के काव्य के काव्य-गुणों पर प्रकाश डालना है। इस अध्ययन को हम रस से आरम्भ करेंगे।

१—रस

पदावली में शांत, शृङ्गार, भक्ति और वीर रस की रचनाएँ हैं। अन्य रसों का उसमें अभाव है। विद्यापति सुबद्ध कृष्ण-कथा नहीं कह रहे थे, उन्होंने राधाकृष्ण की प्रेम-लीला के प्रसंग को ही सारी कथा में से चुन लिया है (सच तो यह है कि उन्होंने इस लीला को इस रूप में आप ही गढ़ा है)। अतः

उसमें श्रृङ्गार की ही प्रधानता है। यह बात इसलिए और भी अधिक है कि विद्यापति ने राधा-कृष्ण का चित्रण करते हुए नायक-नायिका के क्रिया-कलापों और तत्सम्बन्धी काव्य-शास्त्र गत धारणाओं को ही अपने सामने रखा है। इस कथा में भक्ति का कहीं-कहीं आभास भर मिल जाता है। जिससे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन पदों को किस रस के अंतर्गत रखें—श्रृङ्गार रस के या भक्ति रस के। परन्तु यदि भक्ति के उस थोड़े से, हलके से आवरण को हटा दिया जाय और राधा-कृष्ण की विशिष्टता से दृष्टि हटा ली जाय तो पदावली राधा-कृष्ण-सम्बन्धी पदों के भीतर मधुर रस की अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रतिष्ठा होती है।

शांत रस के पद निश्चय ही कवि ने अत्यन्त प्रौढ़ावस्था में लिखे हैं, और उसमे साधारणत: वैराग्य-भावना का ही विकास दिखलाई पड़ता है, जैसे इस पद में

तातल सैकत वारि बुन्द सम सुत मित रमनि समाजे
तोहे बिसरि मन ताहि समर्पिनु अब मोहि हब कोन काजे
माधव हम परिणाम निराशा
तुहु जगतारन दीन दयामय अतय तोहरि बिसवासा
आध जनम हम नींद गवायनु जरा सिसु कत दिन गैला
निधुवन रमनी रस रंग मातहुनु तोहे भजब कोन बेला

परन्तु इस प्रकार के पद विद्यापति के साहित्य में बहुत ही कम मिलेंगे। इनमें वैराग्य, शरणागति और पश्चात्ताप की भावनाओं का सुन्दर रूप में विकास हुआ है।

माधव बहुत विनति करि तोय
देइ तुलसि तिल देह समर्पिनु दया जनि छाड़बि मोय
(शरणागति)

यतन अनेक धन पाप बटोरलु मेलि परिजन खाय
मरनक बेरि हेरि कोइ नहि पूछइ करम संग चलि जाय
ए हरि बन्दओं तुअ पद नाय
तुअ पद परिहरि पाप-पयोनिधि पार क कवन उपाय
(पश्चात्ताप)

भक्ति-पदों के सम्बन्ध में हमने अन्यत्र विचार किया है और उसी प्रसंग में उदाहरण भी दे दिये हैं।

वीर रस के पद और भी कम हैं। ये वे ऐतिहासिक पद हैं जिनमें शिवसिंह की विजय और सिंहासनारोहण आदि का वर्णन है। वास्तव में विद्यापति की प्रवृत्ति कोमल रसों की ओर ही थी, परुष रस उन्हें प्रिय नहीं जान पड़ते। परन्तु वीर रस के पदों में भी उन्होंने परम्परागत काव्य-शैली का अनुसरण करके सुन्दर कविता की है—

दूर दुग्गम दमसिभंजेओ गाढ़गढ़ गूढ़िअ गंजेओ
पातिसाह ससीम सीमा समर दरसेओरे ॥१॥
ढोल तरल निसान सद्दहि भेरि काहल सङ्ख नद्दहि
तीनि भुअन निकेत केतकि सान भरिओरे ॥२॥
कोहे नीरे पयान चलिओ वायु मध्ये राय गरुओ
तरणि तेअ तुलाधार परताप गहिओरे ॥३॥
मेरु कनक सुमेरु कम्पिय धरणि पूरिय गगन झम्पिय
हाति तुरय पदाति पय भर कमन सहिओरे ॥४॥
तरल तर तरवारि रंगे बिज्जु दाय छटा तरंगे
घोर घन संघात वारिस काल दरसेओरे ॥५॥
तुरय कोटि चाप चूरिय चार दिस यौ विदिस पूरिय
विषम सार असार धारा धोरनी भरिओ ॥६॥
अन्ध कुअ कबन्ध लाइअ फेरवि फफ्फरिस गाइअ
रुहिर मत्त परेत भूत वेताल विछलियो ॥७॥

पार आइ परि पान्थि गंजिय मयि मण्डल मुण्डे मण्डिअ
चारु चन्द्र कहेव कीत्ति सुकेत की तुतिओ ॥८॥
राम रूपे स्वबरन रखिखअ दाव दप्ये दुघाचि खखिअ
सुकवि नव जयदेव भनिओ रे ॥ ६ ॥
देवसिंह नरेन्द्र नन्दन शत्तु नखइ कुल निकन्दन
सिंह सम सिवसिंह रामासकल मुनक निधान गरिपओरे ॥१०॥

२—अलंकार

विद्यापति कल्पनाभूत सौन्दर्य के कवि हैं, अतः उनका प्रधान अलंकार उत्प्रेक्षा है। हिन्दी काव्य-साहित्य में सूरदास को छोड़कर ऐसी सुन्दर उत्प्रेक्षायें किसी भी कवि ने नहीं कही हैं। 'सौन्दर्यांकन' शीर्षक के अंतर्गत कल्पना पर विचार करते हुए हमने कवि की उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण दिये हैं यहाँ कुछ अन्य उदाहरण उपस्थित करते हैं।

घाम विन्दु मुख सुन्दर जोती।
कनक कमल जनु परि गेला मोती ॥

(सुन्दर मुख-ज्योति पर पसीना ऐसा ज्ञात होता है मानो सोने के कमल में मोती फला हो।)

केस निगरइत बहे जलधारा।
चामरे गले जनि मोतिय हारा ॥
अलकहिं तीतल तेहिं अति शोभा।
अलिकुल कमले बेढ़ल मधुलोभा ॥
नीर निरंजन लोचन राता।
सिंदुर मंडित जनि पंकज पाता ॥

(बालों से निकलकर जलधारा बहती है, जैसे चँवर में गुँथा मोती का हार टूट रहा हो और मोती झर रहे हों। मुख पर भीगी अलकें इस प्रकार शोभा पाती हैं जैसे मधु के लोभ में

भ्रमरगण कमल की ओर आकर्षित होकर बढ़े आते हों। पानी से भीग कर आँखें अंजन-रहित और लाल हो गई हैं मानो सिन्दूर-मंडित कमल-पत्र हों।)

नैन बरिसि गेल मेघ असरेस

(नेत्रों से आँसू मघा असरेसा नक्षत्र के सदृश झर रहा है।)

कुच युग पर चीकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि अगल
चाँद विहुन सब तारा

(दोनों कुचों के ऊपर खुले हुए काले केश फैल गये हैं, उनमें हार उलझा हुआ है, मानो चन्द्र-विहीन रजनी में सुमेरु पर्वत के ऊपर तारे चमक रहे हों।)

उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन में अधिक हुआ है।

उत्प्रेक्षा के बाद कवि का प्रिय अलंकार उपमा है। यद्यपि उपमा में उसने रूढ़िगत अप्रस्तुत विधान का ही आश्रय लिया है, तथापि नवीन उद्भावनाएं भी साथ-साथ चलती हैं जिनके कारण प्राचीनता खटकती नहीं। जैसे कुचों के लिए उपमान कमल निश्चित है, परन्तु विद्यापति इस उपमान के साथ एक पूरी कथा जोड़ देते हैं; उनके लिए कुच ऐसे कमल हैं जो बिना नाल के खिले हुए हैं, नायिका के गले में जो गले का हार है, गंगा के जल में पड़े रहने के कारण ये कमल सूख नहीं पाते—

मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायल, नाल बिना रुचि पाई
मणिमय हार धार बहु सुरसरि तैं नहिं कमल सुखाई

"सौन्दर्यांकन" शीर्षक में हमने रूढ़ि-प्राप्त उपमाओं का उल्लेख किया है जिनका विद्यापति पदावली में विशद प्रयोग

मिलता है, परन्तु विद्यापति किस प्रकार इनका अभिनव प्रयोग करते हैं, यह द्रष्टव्य है—

कवरी भय चामरि गिरि कन्दर, मुख भय चाँद अकास
हरिनि नयन भय, स्वर भय कोकिल, गति भय गज वनवास
सुन्दरि काहे मोहि सम्भाषि न यासी
तुव डर यह सब दुरहि पलायल तू कह काहे डरासी
कुच भय कमल कोटक जल मुदि रहु घट परवेस हुतासे
दाड़िम श्रीफल गगन वास करु शम्भु गरल करु ग्रासे
भुज भय कनक मृणाल पङ्क रहु कर भय किसलय काँपे
विद्यापति कह कत कत इच्छानि कहब मदन परतापे

(गुँथी हुई काली चोटी के भय से चमरी मृग गिरि कन्दरा में जाकर छिप रहा, मुख के भय से चन्द्रमा आकाश भागा। नेत्रों से हार कर हरिन, स्वर से हार कर कोयल और गति से हार कर हाथी वन में जाकर रहने लगे। हे सुन्दरी, तू मुझसे बात क्यों नहीं करती ? तेरे ही डर से तो ये सब भाग कर दूर जा बसे हैं, तू किसलिये डरती है ? कुच से सफल स्पर्द्धा न कर सकने के कारण कमल-कोश पानी में ही छिप रहे, घट अग्नि अर्थात् आवा में प्रवेश कर गया, अनार और श्रीफल आकाश में लटक रहे, और शिवजी ने गरल पान कर लिया। तुम्हारी भुजाएँ तो कनक कमल के मृणाल से भी अधिक सुन्दर थीं, अतः कमल पंक में जा रहा। तुम्हारे करतल की समता नहीं कर सकता, अतः किसलय काँपता रहता है।)

सहजहि आनन सुन्दर रे भोंह सुरेखिल आँखि
पंकज मधु पिबि मधुकर रे उड़इ पसारय पाँति

(मुँह स्वभावतः ही सुन्दर है, उसमें भौंहों की सुरेखा से बंधी आँखें हैं जो ऐसी लगती हैं जैसे कमल या मुख

का मधु अर्थात् सुन्दरता को पीकर मधुकर या नेत्र इतने मत्त हो गये हैं कि पंख पसारे ही रह गए, उड़ नहीं पाए।)

चन्दने चरचु पयोधर रे गम गल मुकुताहार
भसम गरल जिमि संकर रे सिर सुरसरि जल धार

(चन्दन से चर्चित पयोधर के ऊपर ग्रीवा से लटकता हुआ गलमुक्ता हार इस प्रकार लगता है जैसे भस्म रमाये हुए शिव के सिर से गंगा की धारा निकल रही हो।

तनु सुकुमार पयोधर गोरा
कनक लता जनि सिरिफल जोरा

(जिसका वदन सुकुमार है और पयोधर गोरे हैं; ऐसा लगता है मानो सोने की वेल में दो श्रीफल लगे हों।)

मुख रुचि मनोहर अधर सुरङ्ग
फूटल बान्धलि कमलक सङ्ग
लोचन युगल भृंग आकार
मनु मातल किए उड़इ न पार

(मन को हरने वाली मुख की कांति है, सुन्दर रंग के होंठ हैं जैसे बन्धूल फूल और कमल साथ-साथ खिले हों। आँखें जैसे दो भ्रमर हों जो मधु से इतने छक गये हैं उड़ नहीं पाते।)

गिमि सों लखल मुकुताहार
कुच युग चकन चरइ गंग धार

(पयोधरों के बीच में गले से लटकता हुआ मोती का हार है मानो गंगा-धारा में दो चकोर क्रीड़ा कर रहे हों।)

जब गोधूली पेखली बेली, धनि मन्दिर बाहर भेली
नव जलधर बीजुरि रेहा, दन्द पसारिअ गेली

(गोधूली की वेला थी उस समय नायिका गृह के बाहर निकली, ऐसा लगा जैसे नए मेघों में बिजली की रेखा चमक गई हो।)

ततहि धायल दुहु लोचन रे जतहि गेलि वर नारी
आसा-लुबुध न तजेय रे कृपनक पाछु भिखारी

(जिधर वह सुन्दरी जाती है उधर ही दोनों लोचन दौड़े जाते हैं। आशा लगी रहती है, कदाचित् अनुकंपा की दृष्टि उधर फिर जाये, इसीसे भिक्षुक कृपण के पीछे भी लगा-लगा रहता है।)

इन अलंकारों पर ही विद्यापति के काव्य की उत्कृष्टता का सेहरा बँधता है, यद्यपि उसमें रूपक, अपन्हुति, दृष्टान्त उदाहरण आदि कितने ही अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। रूपक का प्रयोग अधिक मात्रा में नहीं हुआ है, परन्तु विद्यापति के कुछ रूपक बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। ये अधिकतः रूढ़ि पर आश्रित हैं। "विद्यापति पदावली पर विहंगम दृष्टि" शीर्षक वाले अध्याय में हमने उनके वसन्त के दो रूपक दिये हैं। दोनों में वसन्त को राजेश्वर्य प्रदान किया गया है। इनसे कवि की रूपक-निर्माण की प्रतिभा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अपन्हुति अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण है—

कत न वेदन मोहि देसि मदना।
हर नहिं बला मोहि जुवती जना॥
विभुति भूषन नहिं चानन क रेनू।
बाघ छाल नहिं मोरा नेतक बसनू॥
नहिं मोग जटा मार चिकुर क वेनी।
सुरसरि नहिं मोरा कुसुम क स्रेनी॥
चाँदन क बिन्द मोरा नहिं इन्दु छोटा।
ललाट पावक नहिं सिन्दुर क फोटा॥

नहिं मोरा कालकूट मृगमद चारु।
फनपति नहिं मोरा मुकता हारु॥
भनइ विद्यापति सुन देव कामा।
एक पए दूखन नाम मोर वामा॥

(हे मदन, तू मुझे वेदना क्यों दे रहा है? मैं शिव नहीं हूँ, मैं तो युवती हूं, यह मेरे शीश पर जटा-जूट नहीं है, यह तो वेणी है। मेरे सिर पर जो तू यह देखता है यह वेणी में गुँथे हुए फूल हैं, गंगा नहीं है। यह मेरे ललाट पर तिलक है, चन्द्रमा नहीं है, तिलक लगा है। यह सिन्दुर-बिन्दु है, अग्नि वाला शिव का तीसरा नेत्र नहीं है। मैंने कण्ठ पर मृगमद का लेप किया है, यह गरल की काली रेखाएँ नहीं हैं। यह गले में मोतियों का हार है, सर्पराज नहीं। विद्यापति कहते हैं कि नायिका की उक्ति है, हे कामदेव मेरा एक ही दोष है जिससे तुम भ्रम में पड़ गये, शंकर समझ कर मुझे दुःख देने लगे। वह दोष यह है कि मेरा नाम भी "वामा" अर्थात् रमणी है जो शंकर का भी नाम है ("वामा" अर्थात् वामदेव)।

परन्तु विद्यापति के काव्य का यथार्थ सौन्दर्य उसके स्वाभाविक और अभिधात्मक वर्णन में है। जहाँ उन्होंने क्लिष्ट कूट काव्य नहीं लिखा है वहाँ से कोई भी पद उठा कर सामने रखा जा सकता है, जहाँ अलंकार प्रयुक्त हुए हैं वहाँ भी स्वाभाविकता और सहज सौन्दर्य की प्रतिष्ठा का ध्यान रखा गया है।

'महाकवि विद्यापति' (स्व० पं० शिवनन्दन ठाकुर) से कुछ अन्य अलंकारों के प्रयोग की सूची उपस्थित कर हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे—

अनुप्रास

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गइल निज ठामे
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन बड़ पाँतर दुर गामे

(कमल बन्द हो गया, भौंरे घर चले, पक्षीगण अपने-अपने स्थान की ओर चले। रे पथिकों, अपना मन स्थिर करो। बहुत बड़ा मैदान है, गाँव बहुत दूर है।)

यमक

कूट पदों में इस अलंकार का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक हुआ है जैसे—

सारंग नयन, वयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंग केलि करथि मधु-पाने॥

परन्तु अन्य स्थान पर भी यह अलंकार मिलेगा जैसे—

नयन नयन दुहु नयन बयान

(वियोग के बाद परस्पर मिलन होने पर दोनों की आँखें परस्पर मिल गईं)

विरोधाभास

मेरु उपर दुइ कमल फुलाएल नाल विना रुचि पाई

(यहाँ पर्वत पर कमल और नालों की अनुपस्थिति विरोध उत्पन्न करते हैं)

अतिशयोक्ति

कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने

अनन्वय

जौं श्रीखण्ड-सौरभ अति दुर्लभ तौं पुनि काठ कठोर।
जौं जगदीस निसाकर तौं पुन एकहि पच्छ उजोर॥
मनि समान औरो नहिं दोसर तनिकर पाथर नामे।
कनक सरिस एक तोहें माधव मन होइछ अनुमाने॥

(चंदन की सुगन्धि उत्तम होती है, किन्तु वह लकड़ी है, और उसमें कठोरता है। चन्द्रमा जगदीश है, किन्तु उनकी चाँदनी एक ही पक्ष तक रहती है। मणि के समान दूसरी कोई चीज नहीं है, किन्तु वह पत्थर है। इससे मालूम पड़ता है कि हे माधव, तुम्हारे समान तुम ही हो।)

अर्थान्तरन्यास

पुनि फिरि सोइ नयन जदि हेरवि
पाओव चेतन नाइ
भुंजगिनि दंसि पुनहि जदि दंसय
तबहिं समय विष जाइ

(फिर यदि तुम उसे देखो तो तुम चेतन हो पाओगे। सर्पिणी जब अपने काटे हुए को दुबारा काटती है, तभी विष दूर होता है।)

यथा-संख्य

जते देखल तत कहिअ न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा
हरिन, इन्दु, अरविन्द, करिनि, हिम
पिक बूझल अनुमानी
नयन वदन परिमल गति
तनुरुचि अओ अति सुललित वानी

परिकर

दुहु रस-आगर नागर डीठ
हम न बुझिअ रस तीत कि मीठ

व्यतिरेक

कबरी भय चामरि गिरि कन्दर मुख भय चाँद अकासे
हरिन नयन-भय, सरभय कोकिल, गतिभय गज; बनवासे
तुअ डर ई सब दुरइ पड़ाएल
तोहें पुनि काहि डरासि

एकावली

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज की सरसिज बिनु सूरे
जौवन बिनु तन, तन बिनु जौवन, की जौवन पिअ दूरे

मीलित

देह जोति ससि किरन समाइल
के बिभिनावए पार

पर्यायोक्ति

मरमक वेदन मरमहि जान
आनक दुख आन नहि जान

दृष्टान्त

जइओ तरनि जल सोखय सजनी कमल न तेजय पाँक
जे जन रतल जाहि सों सजनी कि करत विधि भय बाँक

विषम

पिआ विछोहल अनल जो बरिसय के बोल सीतल चन्दा

अपन्हुति

इसका एक उदाहरण पीछे दिया जा चुका है। दूसरा इस प्रकार है—

गरुअ कुंभ सिर थिर नहि रह
नें उगमल केस पासे

सखिगन सँ हम पाछाँ पड़लिहुँ
तें मेल दीघ निसासे
बिनु विचारि बेभिचर बुझयबह
सासु करतिह रोसे

(यदि तुम बिना विचारे व्यभिचार का दोषारोपण करोगी तो सास बिगड़ जायगी । घड़ा भारी था । वह सिर पर स्थिर नहीं रह सकता था । इसलिए बाल बिखर गये । मैं पीछे पड़ गई । इसलिए लम्बी साँस निकल रही है)

अप्रस्तुत प्रशंसा

भमरा मेल धुरम सब ठाम । तोहें बिनु मालति नहिं बिसराम ॥
(यहाँ कृष्ण भौंरे हैं, मालती है राधा)

तद्‌गुण

अनुखन माधव माधव रटइत, सुन्दरि मेलि मधाई

असंगति

दिठि अपराध परान कए पीड़सि
(अपराध तो आँखों का, चितवन का, पीड़ा प्राणों को)

विशेष

कनकलता बनि संचर रे महि निरअवलम्ब

काव्यलिंग

कुच जुग अरविन्द
बिगसित नहिं किछु कारन रे
सोझाँ मुखचन्द

सन्देह

कनकलता अरविन्दा । मदनाँ माँजरि उगि गेल चन्दा ॥
केओ कहे सैवल छपला, केओ बोले नहिं नहिं मेघे झँपला
केओ बोले भमय भमरा, केओ बोल नहिं नहिं चरय चकोरा

श्लेष

अतय चलइ सखि भीतर कुंज
जहाँ रह हरि महाबल पुंज

(यहाँ हरि १ कृष्ण २ सिंह)

परन्तु अधिकांश स्थलों में संकर या संसृष्टि है अर्थात् एक ही स्थान पर कई अलंकारों का प्रयोग है जैसे

जुगल सैल सित हिमकर देखल एक कमल दुइ जोति रे
फुलिल मधुरि फुल सिन्दुरे लोटायल, पाँति बइसलि गजमोति रे

यहाँ अतिशयोक्ति, विरोधाभास और अनुप्रास अलंकार हैं। इसी प्रकार—

चिकुर-निकर तम-सम, पुनु आनन पुनिम ससी
नयन पंकज के पतिआओत एक ठाम रहु बसी

में उपमा, रूपक और विरोधाभास का संकर है।

८

उक्ति-सौन्दर्य और वाग्वैदग्ध्य

विद्यापति के काव्य का एक बड़ा भाग उक्ति-सौन्दर्य और वाग्वैदग्ध्य के उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। हम देख चुके हैं कि विद्यापति कोरे कवि ही नहीं थे, उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव किया था, कटु सत्य को परखा था, राज्यों के उत्थान-पतन को देखा-समझा था और समाज-चेत्ता मनीषियों की भाँति आचार और धर्म को एक बार फिर सुश्रृंखलित करने की चेष्टा की थी। उनका काव्य-ज्ञान भी अपूर्व था। अतः जहाँ उनके काव्य में कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान है, वहाँ पांडित्य भी है, लौकिक अनुभव भी है, बौद्धिक तत्त्व भी है। उक्ति-स्थापन और वाग्विलास के रूप में ये तत्त्व प्रकट हुए हैं।

उक्ति-सौन्दर्य के लिए विद्यापति के काव्य में लोकोक्तियों का प्रयोग एवं दूती-प्रसंग में दूती का वाग्चातुर्य देखना उचित है। लोक में जो सत्य प्रतिष्ठित हो चुका है अथवा जिसे कवि ने अनुभव कर इस योग्य समझा है कि लोक-जीवन में प्रतिष्ठित हो, उसे उसने अत्यन्त क्षेप में सुबद्ध रूप में रख दिया है। ऐसी पंक्तियों ने आज मैथिली लोकोक्तियों का रूप ग्रहण कर लिया है। डा० उमेश मिश्र ने अपनी पुस्तक "विद्यापति ठाकुर" (पृ० १०१–११६) में विद्यापति पदावली से १८७

लोकोक्तियाँ उपस्थित की हैं। यहाँ हम उनमें से कुछ लोकोक्तियाँ देते हैं। इनसे कवि के विस्तृत अनुभव का पता लगेगा।

१—अपन वेदन तिहि निवेदिअ जे पर वेदन जान

(अपना दुःख उसी से कहो जो दूसरे का दुःख समझ सकता हो)

२—अपनहु न देखिअ अपनुक देह

(अपनी देह आप ही नहीं देखी जाती है)

३—आइति पड़ले बुझिअ विवेक

(अवसर पड़ने पर लोगों की विवेक-बुद्धि का पता लगता है)

४—आदरे जानिअ अगिल काज

(किसी के पास जाने पर यदि वह आदर भाव से मिले तो समझ लो काम सिद्ध होगा)

५—काच कांचन न जानय मूल

(काँच सोने का मूल्य नहीं समझता)

६—आरति गाहक महग बेसाह

(आवश्यकता पड़ने पर ही जो खरीदता है वह महँगा ही खरीदता है)

७—कुदिना हित जन अनहित रे थिक जगत सोभाव

(यह संसार का नियम है कि कुसमय में हित करने वाले भी शत्रु हो जाते हैं।)

८—चोरि पिरीति होय लाख गुन रंग

(जो प्रेम छिपा कर किया जाता है उसमें लाख गुना अधिक आनन्द आता है)

९—न पूरे अथय धन दारिद पिआस

(थोड़े धन से दरिद्र मनुष्य की प्यास नहीं बुझती)

१०—पिपिडी का जओ पाँखि जनयए अनल करए झपान
(चिउँटियों के जब पंख निकलते हैं तो वे आग में कूद पड़ती हैं)

११—बड़ेओ भूखन नहि दुहु कओरे खाए
(बड़ी भूख में भी दोनों हाथों से नहीं खाया जाता)

१२—मणि कादव लेपटाए रे
तए की हुनक गुन जाए रे
(मणि कीचड़ में लपट जाती है तो क्या उसका गुण चला जाता है ?)

१३—मानिक परल कुबनिक हाथ
(मणि मूर्ख वणिक के हाथ में पड़ गई)

१४—वानर कण्ठे की मोतियहार
(बन्दर के गले में मोती का हार पहराइये, तो क्या ?)

१५—वानर मुख की सोभए पान
(बन्दर के मुँह में पान की क्या शोभा ?)

१६—साँकर खाइत भाँगए दाँत
(शक्कर खाने से किसी के दाँत टूटते सुने गये हैं ?)

१७—सिआर काँ जओ सींग जनमए
गिरि उपारए चाह
(सिआर के यदि सींग निकल आयें तो वह चाहेगा चलो पहाड़ उखाड़ लें)

१८—सीत समायेल बसन पाइअ
तैंदहु की उपकार
(शीत की समाप्ति पर कपड़े मिले तो उससे क्या उपकार हुआ ?)

१६—हाथे न मेट पखान क रेह
(हाथ के मलने से पत्थर पर पड़ी हुई लकीर नहीं मिटती)

इन अनुभवों को विद्यापति ने आश्चर्यजनक रीति से शृंगार के प्रसंगों में चसपा कर दिया है, अधिकतः दूती-वचन और मान के प्रसंग में, जीवन के अनेक क्षेत्रों से प्राप्त किये गये अनुभवों को इस प्रकार शृंगारनिष्ठ कर देना अत्यन्त कौशल का काम था, जिसके कारण विद्यापति के काव्य में एक विशेष प्रकार की चमत्कारिता आ जाती है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि भाव में विभोर होकर कविता नहीं करता था, उसकी बुद्धि सचेष्ट रहती थी और जहाँ आवश्यकता पड़ती, वहाँ वह रस-प्रतिष्ठा में सहायक बनती। ये लोकोक्तियाँ कवि के अन्तर्पट और स्वभाव पर विशेष प्रकाश डालती हैं—

(१) कवि भाग्यवादी है। जिसके सामने अनेक राज्यों ने पलटे खाये, उसके लिए भाग्यवादी और अवसरवादी बन जाना आश्चर्य की बात नहीं—

हाथे न मेट पखान क रेहा
अवसर लाग लइए उपकार
अवसर बहला रह पछताव
गेल जउबन पुनु पलटि न आवए केवल रह पछताव

(२) परन्तु वह कर्म में विश्वास करता है और साहस को कभी भी छोड़ना नहीं चाहता—

साहस साहिअ असाधे
जेकर साहस ता हो सिधि

(३) वह "सुपुरुष" का उपासक है—

सुजनक प्रेम हेम समतूल। दहइत कनक दिगुन होय मूल
सुपुरुष कबहु न तेजइ नेह
सुपुरुष कबहु न होएत न हाने
सुपुरुष प्रेम कबहुँ नहि छाड़

सुपुरुष वचन पखान क रेह
सुपुरुष विलसय से वर नारि

(४) उनने दुःख-सुख, योग्य-अयोग्य की भिन्नता से भरे इस संसार को समझा है—

सकल कंठे नहिं कोकिल बानि
बिनु दुख सुख कबहु नहिं होए
सब फुल मधु मधुर नहिं

दूती-प्रसंग की उक्तियाँ देखते ही बन पड़ती हैं—

जेहि खन निअर गमन होय मोर
तेहि खन कान्ह कुशल पुछे तोर
मन दय बुझल तोहर अनुराग
पुन फल गुणमति पिअ मन जाग
पुनु पुछु पुनु पुछ मोर मुख हेरि
कहिलिओ काईनी कहवि कत बेरि
आन बेरि अवसरि चल आन
अपने रभस कर कहिनी कहवि कत बेरि
आन बेरि अवसर चल आन
अपने रभस कर कहिनी कान
छुछुधुल भमर कि देश उपाय
बांधल हरिल न छाड़य ठाम

या

ये धनि कमलिनि सुन हित बानी
प्रेम करवि अब सुपुरुष जानी
सुजनक प्रेम हेम समतूल
दहइत कनक दिगुन होय मूल
टुटइत नहिं टुटे प्रेम अदभूत
जैसन बढ़त मृनालक सूत

सबहु मतंगज मोति नहिं मानी
सकल कंठ नहिं कोकिल बानी
सकल समेय नहिं ऋतु वसन्त
सकल पुरुष नारि नेंह गुनवन्त
भन विद्यापति सुन वर नारी
प्रेमक रीति अब बुझह विचारी

कूट के विषय में हमने अलग ही लिखा है। वह तो निश्चित रूप से पांडित्य-प्रदर्शन के लिए ही है। उसके पीछे चमत्कार की भावना है, वह धर्म-साधना नहीं जो सूर के कूटों के मूल में काम करती है।

सम्भोग-चित्रण में विद्यापति ने लौकिक अनुभवों का सार समेट कर रख दिया है। काव्य में इस प्रकार के प्रसंगों का प्रवेश गर्हित अवश्य माना जाता है परन्तु इन स्थलों से भी कवि की विदग्धता पर प्रकाश पड़ता है। सम्भोग के चित्रण (सुरतारम्भ, रति, रत्यन्त) सूर में भी हैं, परन्तु उन्हें इतना विस्तार नहीं दिया गया है, न उनका इतना सूक्ष्म चित्रण ही है।

रहस्यवादी पदों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। यहाँ लौकिक और पारलौकिक सम्बन्धों को एक साथ निभाने की चेष्टा स्पष्ट है।

वस्तुतः विद्यापति महान पंडित थे। हम उल्लेख कर चुके हैं कि उनके लिये 'काव्य प्रकाश' की एक टीका की प्रतिलिपि की गई थी। इससे यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि वे संस्कृत काव्य-शास्त्र से भली भाँति परिचित थे। उनके काव्य में अलंकारों (विशेषकर उत्प्रेक्षा) का बहुत सुन्दर प्रचुर प्रयोग किया गया है। वह अनुभूति के कवि नहीं हैं। वह पंडित कवि हैं। यही कारण है कि उन्होंने एक ही प्रसंग पर अनेक तरह की कल्पनाओं का आरोप किया है और कवित्व-शक्ति और भाँति

भाँति की तर्क-प्रधान उक्तियों के द्वारा वाग्वैदग्ध्य की स्थापना की है। उदाहरण के लिए, उन्होंने एक ही स्नान-प्रसंग पर कई पद कहे हैं। प्रत्येक पद में नई-नई उद्भावनाएँ की गई हैं। उनके अध्ययन से यह साफ पता चल जाता है कि कवि अनुभूति को पीछे डाल कर अपनी उत्प्रेक्षा-पटुता दिखाने की चेष्टा कर रहा है। नायिका नहा रही है या नहा कर उठी है, उसके बालों से पानी की बूँदें झर रही हैं। इस बात को कवि ने तीन पदों में भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पना करते हुए इस कला-विदग्धता के साथ प्रकट किया है—

(१) चिकुर गरए जल धारा
जनि मुख-ससि डरे रोअए अँधारा

(२) चिकुर गरए जल धारा
मेह बरिस जनि मोतिय हारा

(३) केस निगराइते बह जलधारा
चामरे गलय जनि मोतिय हाराला

यहाँ अनुभूति का प्रश्न ही नहीं है, कवि को नवीन-नवीन उद्भावनाएँ करना ही प्रिय है। पहले पद में वह एक कवि-रूढ़ि का आश्रय लेता है कि अंधकार चन्द्रमा (प्रकाश) से डर कर भागता है और रोता है। दूसरे पद में वह ऐसे मेघों की कल्पना करता है जो पानी के बदले मोती बरसाते हैं। तीसरे पद में मेघ का स्थान चमर ने ले लिया जिसमें टँके हुए मोती टूट-टूट कर गिर रहे हैं। ये सब कल्पना के खेल हैं। यहाँ रस-सृष्टि की बात ही वृथा है।

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि उदाहरण अलंकार के रूप में अथवा पद्य के विषय का निर्वाह करते हुए अन्त में विद्यापति ने जो कितनी ही सूक्तियाँ कही हैं, वे अपूर्व हैं। इस प्रकार की सूक्तियों का भी साहित्य में अपना स्थान है। तुलसी, रहीम

गिरिधर, वृन्द आदि कवियों के काव्य में इसी तरह की कितनी ही सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। वृन्द और गिरिधर जैसे नीति-कवियों का आधार ही इस प्रकार की सूक्तियाँ हैं। वे बात कहने के लिए ही, बल्कि घटाने के लिए ही लिखते हैं। विद्यापति में यह बात नहीं। वहाँ सूक्त का विषय के साथ ही विकास हुआ है, यद्यपि उसका अस्तित्व अलग भी उतना ही चमत्कारिक है। प्रेमचन्द के साहित्य को छोड़ कर हिन्दी के किसी लेखक और कवि में ऐसी सुन्दर सूक्तियों का झमघट नहीं मिलेगा जिनमें जीवन, नीति, मानव-मन समाज और शिष्टता के सम्बन्ध में इतनी सुन्दर बातें समास-रूप में कही हैं।

आश्चर्य है कि विद्यापति ने अपने शृङ्गारिक काव्य में ऐसी सूक्तियाँ लिखीं जिनका रति भाव से दूर का ही सम्बन्ध हो सकता है और उनका पदों के विषय से निर्वाह किया। इस प्रकार की परिस्थिति और किसी काव्य में नहीं है। ऐसा क्यों है? क्यों विद्यापति ने नीति और शृङ्गार का बेमेल जोड़ किया? उत्तर स्पष्ट है। कवि विद्यापति के अन्य ग्रन्थों से पता चलता है कि स्वयं उन्होंने अपने चारों ओर के जीवन का बड़ा विस्तृत अध्ययन किया था। अतः उनके लिये इस प्रकार की नीतिप्रद सूक्तियाँ लिखना असम्भव था। संस्कृत मुक्तकों में यत्र-तत्र नीति और शृङ्गार का गठबन्धन भी हो गया था। परन्तु ऐसा गठबन्धन कभी-कभी हास्यप्रद भी हो सकता है जैसा विद्यापति की ही इन सूक्तियों से प्रकट होता है। दूती नायिका से प्रार्थी है कि वह नायक को संतुष्ट कर दे। वहाँ नायिका का यह कहना—

थिर नहिं जउवन थिर नहिं देह, थिर नहिं रहिए बालमु सञो नेह
थिर नहिं जानह ई संसार, एक पए थिर रह पर उपकार
एहन सबहुका ई व्यवहार, पर पीड़ाए बिपत थिर भार
भनहिं विद्यापति गाबि कह सार, से जीवन जे पर उपकार

एक संकीर्ण स्वार्थ को उपस्थित करते हैं और उक्ति को हास्यास्पद बना देते हैं। जीवन की सारी परिस्थितियों और उनसे प्राप्त निष्कर्षों को शृङ्गार मात्र की ओर प्रवाहित करना काव्य की एक बड़ी विडम्बना है। कवि का यह प्रयत्न श्लाघ्य नहीं है। आलोचक का यह कथन कि विद्यापति को "समाज की नैतिक उन्नति की अभिलाषा थी" या "विद्यापति कविता द्वारा नैतिक शिक्षा प्रदान करने का ठीक वही उपाय काम में लाते हैं जो विश्वकवि शेक्सपियर और कालीदास ने किया है, उन्होंने अधिक प्रभावोत्पादक होने के कारण सरस नैतिक सूक्तियाँ कामिनी के मुख से कहलाई हैं" (देखिये, विद्यापति काव्यालोक) किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं है। ऐसे प्रयोग स्वयं कवि की उक्ति "मानिक पड़ल कुबानिक हाथ" चरितार्थ करते हैं।

जो हो इन नीति की सूक्तियों का कवि के काव्य में महत्त्व-पूर्ण स्थान है। स्वतन्त्ररूप से उनका अध्ययन अवांछनीय नहीं है। इस अध्ययन के द्वारा हम कवि की अनुभूतियों, उसके ज्ञानार्जन क्षेत्र, स्वभाव एवं उसके जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्तों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान सकते हैं। इस प्रकार की सूक्तियाँ पदावली को छोड़ कर अन्य ग्रन्थों में भी मिलती हैं। डाक्टर उमेश मिश्र ने अपने ग्रंथ में इनका संकलन किया है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की लोकोक्तियों को विद्यापति अपने काव्य के प्रारम्भिक काल से अपनी रचना में स्थान देते हैं।

९

विद्यापति के दृष्टिकूट

मध्ययुग के कृष्णोपासकों में दृष्टिकूट लिखने की शैली भी चली है। सूरदास के दृष्टिकूट प्रसिद्ध हैं। परन्तु सूरदास से पहले विद्यापति कितने ही दृष्टिकूटों की रचना कर चुके थे।

विद्यापति पंडितों के समाज में रहते थे। ऐसे समाज में हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क का ही अधिक आदर होता है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि वे क्लिष्ट कल्पना की ओर झुके। विद्यापति के कूट राधा के सौन्दर्य और प्रेम-विरह-जन्य कार्य-व्यापारों के सम्बन्ध में लिखे गये हैं :

(१) कवि उपमा अलंकार का आश्रय लेता है और उपमानों की स्थापना इस प्रकार से करता है कि वे उपमेय का स्थान भर सकें और एक नारी-चित्र की सृष्टि करें। उदाहरण के लिए, विद्यापति का प्रसिद्ध कूट है, जिसे हम अन्यत्र भी उद्धृत कर चुके हैं—

माधव कि कहब सुन्दर रूप

× × ×

पल्लवराज चरण युग शोभित गति गजराजक भाने
कनक कदलि पर सिंह समारल, तापर मेरु समाने
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पाई
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तैं नहिं कमल सुखाई

अधर बिम्ब सन दसन दाड़िम बिजु रवि ससि उगथिक पासे
राहु दूरि बसु निअरो न आवथि तेँ नहिं करय गरासे
सारंग नयन, बयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने
सारंग उपर उगल दुइ सारंग केलि करथि मधु पाने

यहाँ पर उपमेयों के स्थानों पर उपमानों की स्थापना करने और इस प्रकार क्रमशः नख-शिख-वर्णन करने का चमत्कार तो है ही, 'सारंग' के श्लेष से कूट को अधिक गूढ़ बनाने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार इस छन्द में कूट की दो शैलियों का मेल है। एक उपमेय के स्थान पर केवल उपमानों की स्थापना, दूसरे, श्लेष द्वारा गूढ़ता लाने का प्रयत्न। इस प्रकार के कूट विद्यापति में कई मिल जायेंगे।

(२) एक दूसरे प्रकार के कूट वे हैं जिनमें अर्थ संदर्भ से निकलता है और कभी-कभी कई शब्दों के संदर्भों को बराबर मिलाते-चलाते अर्थ-सिद्धि होती है। ऐसे संदर्भों वाले पदों में प्रत्येक पंक्ति का पहला संदर्भयुक्त शब्द अत्यन्त गूढ़ होता है, उसका भेद खुल जाने पर क्रम से चल कर अर्थ-प्राप्ति हो जाती है। विद्यापति के काव्य में इस शैली के भी कई कूट मिलेंगे—

माधव जाइत देखलि पथ रामा
गरुड़ासन सख तातक वाहन ता सम गति अभिरामा
दच्छ सुता चारिम पति भगिनी तनव बरनि सम रूपा
सुरपति अरि दुहिता पति बैरी तेँ भरि मैल अनूपा
अदिति तनय बरि गुरु चारिम गता सम आनन कोती
कुम्भ तनय तसु असन तनय तसु कोन बैसावलि मोती
नन्द घरनि तनया तसु वाहन तउ सम माझक छीनी
कामधेनु पति ता पति प्रिय फल उरज इनल जिमि जीनी
भन विद्यापति सुनु वर जौमति अपरूप रूपक रंगे
रखन अरि पतनी तातक वाहन तपता सह पाविअ संगे

इस कूट का विश्लेषण इस प्रकार होगा

(१) गरुड़ासन सख तातक वाहन ता सम गति

(गरुड़ासन अर्थात् कृष्ण के सखा अर्थात् अर्जुन के पिता अर्थात् इन्द्र के वाहन अर्थात् ऐरावत) ऐरावत के समान जिसकी गति है, ऐसी नायिका

(२) दच्छसुता चारिम पति भगिनी तनय घरति सम रूपा

(दच्छ की चौथी सुता अर्थात् रोहिणी के पति अर्थात् सोम या चन्द्रमा की भगिनी अर्थात् कामदेव की स्त्री रति) रति जैसा जिसका रूप है

(३) सुरपति अरि दुहिता सम वैरी तें भरि मेलि अनूपा

(सुरपति अरि अर्थात् हिमालय, हिमालय की पुत्री अर्थात् पार्वती के पति अर्थात् शिव के वैरी, अर्थात् कामदेव) जो कामदेव के प्रभाव के कारण अनूप दिखलाई पड़ती है, अर्थात् चढ़ती जवानी के कारण और भी सुन्दरी लगती है

(४) अदिति तनय वैरी गुरु चारिम ता सम आनन कांति

(अदिति-तनय अर्थात् देवता, उनके वैरी दैत्य, दैत्यों के गुरु शुक्र, उनसे चौथा [चार] चन्द्र) चन्द्रमा की भाँति कांतिवान जिसका मुख है

(५) कुम्भ तनय तसु असन तनय तसु कोप दँतावलि पाँती

(कुम्भ-तनय अर्थात् अगस्त, उनका अशन समुद्र, समुद्र का पुत्र मोती) दाँत ऐसे हैं जैसे मोती के समूह की पाँति लगी हो

(६) नंद घरनि तनया तसु वाहन ता सम मामक लीनी

(नन्द-घरनि अर्थात् यशोदा, उसकी पुत्री, माया अथवा दुर्गा, दुर्गा के वाहन सिंह) सिंह की कटि जैसी जिसकी कटि क्षीण है

(७) कामधेनु पति ता पति प्रिय फल उरज दनल जिनि जीसी

(कामधेनु पति वैल, उसके पति [स्वामी] शिव, उनके प्रिय फल वेल [विल्वफल]) विल्वफल की भाँति जिसका कुच कठोर है

(८) रावन अरि पतनी तातक तप ता सह पाविअ संगे

(रावन अरि रामचन्द्र की पत्नी सीता के पिता जनक) जनक के समान जो तप करे वह उस नायिका का सहवास प्राप्त कर सकता है।

अर्थ हुए—

विद्यापति कहते हैं—उस युवती का रूप-रंग अपूर्व है। हे माधव, मैंने उसे जाते हुए देखा। ऐरावत की चाल की तरह उसकी गति है। रति की तरह उसका रूप है। यौवन चढ़ रहा है (कामदेव दक्षिण है), इससे और भी सुन्दरी लगती है। इसके मुख की कांति चन्द्रमा—जैसी है। दांत जैसे मोतियों की पंक्ति लगी हो। सिंह की कटि की तरह क्षीण कटि। विल्वफल की तरह कठोर छातियाँ। कोई बड़ा तपी ही उसे प्राप्त कर सकता है।

स्पष्ट है कि कवि ने परम्परागत रूढ़ सामग्री का ही प्रयोग किया है, परन्तु एक नए ढंग से जिससे, सौन्दर्य तो कुछ बढ़ा नहीं, व्यर्थ की माथापच्ची हाथ-पल्ले पड़ी।

इसी श्रेणी के कुछ कूट हैं जो इतने कठिन नहीं हैं, शृङ्खला को इतनी दूर तक नहीं खींचा गया है, जितनी दूर हम उसे ऊपर उद्धृत पद में खिचा हुआ पाते हैं—

माधव, जाइति देखलि पथ रामा
अबला अरुन तारागन वेढ़लि चिकुर चामर अनुपामा
जलनिधि सुत सन वदन सोहावन, सिखर बीज रद पाती
कनकलता जनि फरल सिरीफल बीहि रचल बहु भाँती

अजेआसुत रिपु वाहन जेहन ता सन चलु जिमि राही
सागर गरह साजि वर कामिनि चललि भवन पति ताही
खगपति तनय तासु रिपु तनया ता गति जेहन समाने
हरि वाहन तेहि हेरइत हेरलन्हि कवि विद्यापति भाने

(अरुन=सिन्दुर-विन्दु; तारागन=वालों में गुंथे मोती; जलनिधि सुत=चन्द्रमा; सिखर बीज=अनार का दाना; कनकलता=नायिका की देह; सिरीफल=कुच; अजेआसुत रिपु वाहन जेहन ता सन चलु जिमि राही=अजेआसुत अर्थात् बकरा; उसका रिपु दुर्गा, दुर्गा का बाहन=सिंह; सागर[1] गरह[2]= ७+९=१६ सोलह शृंगार; खगपति[3] तनय तासु रिपु तनया ग्रहपति=अर्थात चन्द्रमा; चन्द्रमा का पुत्र बुद्ध; बुद्ध का शत्रु सूर्य; सूर्य की पुत्री यमुना; हरि वाहन=गरुड़)

अर्थ इस प्रकार है—

"कृष्ण ने राधा को मार्ग में जाते देखा। उसके मस्तक पर सिन्दूर-बिन्दु झलक रहा था; उसे घेरे हुए थे बालों में गुँथे मोती और काले केश। चन्द्रमा की तरह सुन्दर उस नायिका का मुख था; अनार के दानों जैसी दाँतों की पंक्ति। वह सिंह के समान निर्भीक, निःशंकगति से चली जा रही थी। वह १६ शृंगार से सज कर प्रेमी से मिलने चली थी। श्रीकृष्ण नायिका की प्रतीक्षा यमुना की गति के समान धीरे-धीरे विचरण कर रहे थे। उन्होंने जिस तरह गरुड़ दूर से ही देख लेता है, राधा को दूर से ही आते देख लिया।"

(३) विरह-सम्बन्धी पदों में एक विचित्र प्रकार के कूट का प्रयोग हुआ है जिसका परिचय हमें केवल विद्यापति के

---

[1] सागर ७ माने जाते हैं

[2] ग्रह नव हैं

[3] खग – [illegible]

साहित्य में ही मिलता है। क. इसमें गणित का प्रयोग किया गया और संख्यावाचक शब्दों के ध्वनि-साम्य को लेकर अर्थ निकाले गये हैं। ख. वर्णाक्षरों की गिनती बतला दी गई है और उन्हें क्रमशः बिठालने पर कोई शब्द बन जाते हैं। इसके साथ ही कहीं-कहीं लक्षणा के प्रयोग ने और भी विचित्रता उत्पन्न कर दी है—

भरम भवन तेजि गेलाह मुरारि
जे देखि गेलाह तेकर गुन चारि
प्रथम एगारह फेरि दिअ पांच
तीअक तेगुन थोड़े दिन सांच
जेकर चगुन सम लिअ क विचारि
तैं तोहि भल नहि कहथि मुरारि
चालिस काटि अधा हरि देल
तैं मोर जीवन एहन सन भेल

[हे कृष्ण तुमने भ्रम से ही भुवन छोड़ दिया और चले गये। जिस वयस को तुम देख गये थे, अब उससे चौगुने वयस को प्राप्त हो गई हूँ। ११+५=१६ वर्ष की (जिसका तीन गुना नब्बे या नव्य) नई वय थोड़े ही दिन के लिए सत्य है (अर्थात् थोड़े ही दिन रहती है)। तुमने नहीं विचारा कि (जिसका चौगुना सौ है अर्थात् २५) पच्चीस वर्ष की आयु तक ही तो विलास का समय है। इसी से तो कोई तुम्हें अच्छा नहीं कहता। (चालीस का आधा, बीस) विष (यहाँ विरह रूपी विष) मुझे दे गये, इसी से तो मेरा जीवन ऐसा हो गया।]

प्रथम एकादस दै पहु गेला
सेहो वितित मोर कत दिन भेला
रति अवतार वयस मोर भेल
तइओ न पहु मोर दरसन देल

(प्रथम अक्षर अर्थात् 'क' और एकादश अक्षर अर्थात् ट; कट=अवधि। जिस अवधि को देकर चले गये थे, उसे बीते हुए कितने दिन हो गए। यौवन के चिन्ह प्रकट हुए तब भी उन प्रभु ने दर्शन नहीं दिया।)

माधव माधव होहु समधान
तुअ बिन करव भुवन रितु पान
१४ ६
प्रथम पचीस अठाइस मेल
ता सम बदन हेम हरि लेल
पचिस अठारह विष तनु जार
छिति सुत तेसर से जिव भार
सुमिरिअ माधव तै दिन सिनेह
जे दिन सिंह गेल मीनक गेह

[भुवनरितु=१४+६=२० विष। प्रथम=क; पच्चीस=प; अठाइस=ल; छितिसुत=मंगल; तेसर=मंगल से तीसरा अर्थात् शुक्र (कामदेव)]

जे दिन सिंह गेल मीनक गेह=सिंह राशि का नाम है 'म' और मीन राशि का नाम है 'प'; 'म' से मस्तक; 'प' से पद। जिस दिन तुम्हारा मस्तक मेरे पद पर पड़ा अर्थात् जिस दिन तुम मेरे पैरों पड़ते थे।

अर्थ—"हे कृष्ण, सुनो; तुम्हारे विरह में मैं विष-पान कर लूँगी। मेरा कमल-जैसा मुख विरह-रूपी पाले के लगने से मुरझा गया है। मदन मेरा तन जला रहा है। कामदेव मेरे प्राण ले रहे हैं। हे माधव, कुछ तो उस दिन के प्रेम का स्मरण करो जब तुम मेरे पाँव पड़ते थे।"

माधव बुझलों तुअ गुन आज
पञ्च दुन दश गुन दश से सेगुन गोए देलह कोन काज
चालिस कोटि चारि चौटाई से मैं से पहु मोरा
कपटी कान्ह केलि नहिं जानह कैलह जनमक ओरा
नवो बास कै नौ दुना दै से उर हमर पजाने
से निरसल सुख चाहि लागल सुख कारन के नहिं जाने
साठि काटि दह बुंद विवर्जित से दल कर उपहासे
पहुक विरह सहै नहिं पारौं दुइ दुन करब गरासे
भनहि विद्यापति सुनु वर जौवति ताहि करत केओ बाधा
आपन मन दै परहिं रिझावो कमल नाल दुइ आधा

(हे माधव, तुम्हारे गुण आज समझी। असंख्य शपथ खाने से क्या ? मैं भी नवीन वय की हूं, तुम भी नवीन वय के थे, परन्तु तुम कपटी केलि-विलास की बात क्या जानो ? तुमने मेरे जीवन को निष्फल कर दिया। तुम मेरे प्राणों के प्राण हो। तुम्हें देखकर न जाने क्या सुख मिलता है ? लोग कितना उपहास कर रहे हैं, प्रभु का वियोग सहा नहीं जाता, निश्चय ही विष पान कर लूंगी। विद्यापति कहते हैं, राधा, प्रेम में बाधा कौन डाल सकता है। अपना मन देकर दूसरे के मन को रिझाना चाहिये जिससे कमलनाल की तरह कोई दो टूक न कर सके।)[1]

---

[1] पञ्च दुन दश गुन दश से से गुन = १० × १० × १००
= १,०० ०० = असंख्य

चालिस काटि चारि चौटाई = चालीस में से चार घटा कर जो बचा उसका चौथाई = ४० − ४ = ३६; $\frac{३६}{४}$ = ९ = नव अर्थात नवीन वय नवो बास कै नौ दुना दे = ९००००००००० (नौ सौ कोटि अर्थात नव लक्ष अर्थात नव नायक। साठि काटि दह बुंद विवर्जित = साठ में

(४) एक अन्य प्रकार के कूट का प्रयोग हुआ जो बुझौवल बन कर रह गया है। उदाहरण के लिये नीचे का पद उद्धृत है। जिससे यह ज्ञात होगा कि कवि अश्लील एवं गोप्य बातों को कूट का आश्रय लेकर प्रकट करना चाहता है। इस पद से दो बातें साफ हो जाती हैं, एक तो यह कि कवि की भावना शृंगार में डूबी हुई है, उसकी नायिका ऋतुमती होने का सन्देश भेजने से भी नहीं चूकती। दूसरी बात यह है कि कवि इन कूट पदों में "बुधजन" को सम्बोधित कर रहा। वास्तव में विद्यापति का का सारा काव्य इतना पांडित्यपूर्ण है कि उसका आनन्द इसी वर्ग का व्यक्ति विशेष रूप से ले सकता है। उद्धव ·ा पद है—

कुसुमित कानन कुंज बसी। नैनक काजर घोर मसी
नख सों लिखिलन्हि नलिन क पात। लीखि पठौलन्हि आखर सात
प्रथमहिं लिखलन्हि पहिल बसन्त। दोसरहिं लिखलन्हि तेसरक अंत
लिखि नहिं सकलन्हि पहिल वसन्त। पहिलहिं पद अछि जीवक अंत
भनहिं विद्यापति अच्छर लेख। बुध जन होथि से कहथि विसेख

(वन कुसुमित हो गया। कुंज में बैठकर विरहिणी नायिका नेत्रों के काजल की स्याही बना कर प्रेमी को पत्र लिख रही है। कमल-पत्र पर नख से सात अक्षर लिखती है—"कुसमित कानन" अर्थात् मैं पुष्पवती या ऋतुमती हो गई। पहले लिखा–यह पहला बसंत है अर्थात् पहला बार ऋतुमती हुई हूँ, यौवन का प्रवेश हो गया अर्थात स्नान को प्राप्त हो गई। फिर यह लिखने जा रही थी—"कामदेव (बसंत का अनुज) सता रहा

दस निकाल देने पर जो रह जाता है उसमें से शून्य हटा कर जो रहे=६०–१०=५०; ५=५=पंच=पांच इन्द्रियाँ या पंच लोग दुइ बुन=दो और शून्य=२०=विष

है" परन्तु "कदर्प" जिस नहीं पाई क्योंकि पहला शब्द ही प्राण ले डालता। कवि कहता है—समझदार विशेष अर्थ कहेंगे।

संक्षेप में, विद्यापति की कूट-शैलियों से हम पाठकों का परिचय करा चुके। यहाँ हमें इतना और कहना है कि सूरदास के कूटों और विद्यापति के कूटों में कुछ शैली-साम्य होते हुए भी भावना-वैभिन्न्य है। विद्यापति के कूट के मूल में पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति और शृंगार-भावना है। सूरदास के कूट भक्त के ध्यान के लिए ऐसी सामग्री उपस्थित करते हैं जो मधुर रस को स्थिर करने के लिए नितान्त आवश्यक है। "युगल दम्पति" की विलास-मुद्राओं को धर्म की भित्ति देकर धारणा-ध्यान की वस्तु बना देना सूरदास का काम है। विद्यापति "कौतुक, चमत्कार, पाण्डित्य" इन भावनाओं से आगे नहीं बढ़े। इसीलिए उनका कूट-काव्य उत्तम काव्य की कोटि तक नहीं उठ सका।

१०

विद्यापति का प्रेम-दर्शन

विद्यापति सौन्दर्य-शास्त्र के ही ज्ञाता नहीं, वह स्वयं बड़े-रसिक प्रेमी भावुक जीव जान पड़ते हैं। उनकी अनुभूति इतनी तन्मय नहीं है जितनी चंडीदास की प्रेम-विह्वल पदावली में। कवीन्द्र ने "आधुनिक साहित्य" में विद्यापति और तुलसीदास की तुलना इन शब्दों में की है—

"विद्यापतिर कविताय प्रेमेर भङ्गी, प्रेमेर नृत्य, प्रेमेर दाम्पत्य, चण्डीदासेर कविताय प्रेमेर तीव्रता, प्रेमेर आलोक। ऐइ जन्य छन्द, संगीत एवं विचित्र रंगे विद्यापतिर पद एमन परिपूर्ण एइ जन्य ताहाते सौन्दर्य सुख सम्भोगेर आरम्भेर एमन तरंग-लीला। एइ केवल यौवनेर प्रथम आरम्भेर आनन्दोच्छ्वास केवल अविमिश्र सुख एवं अव्याहत संगीत ध्वनि। दुःख नाइ ये ताहा नहे, किन्तु सुख दुःखेर माझखाने एकय अन्तराल व्यवधान आछे। हय सुख, नय दुःख हय मिलन, नय विरह, एइ रूप परिष्कार श्रेणी विभाग। चण्डीदासेर मतो, सुख दुःखे विरह मिलने जड़ित हइया याय नाई। सेइ जन्य विद्यापतिर प्रेमे यौवनेर नवीनत एवं चण्डीदासेर प्रेमे अधिक वयसेर प्रगाढ़ता आछे। चण्डीदास गभीर एवं व्याकु विद्यापति नवीन एवं मधुर।" सचमुच कवि विरही अभिन्न राममणि के प्रेमी ब्राह्मण चंडीदास के गीत मिलनोन्माद और वेदना-कारुण्य के अन्यतम उदाहरण होंगे। मिलने में प्रेमी का हृदयोल्लास कैसा तीव्र है—

बहु दिन परे बंधुया ऐल, देखा न हइत पराण गेले
ऐतेक सहिल अबला बले, फाटिया मारत पाषाण हैल
दुखि यांर दिन दुखेते गेल, मथुरा नगरे छिले त भाल
ए सब दुख किछु ना गणि, तोमार कुशले कुशले मानि
ए सब दुःख गेल हे दूर, हाराण रतन पाइलाम कोड़े
एखन कोकिल आसिया करुक गान, भ्रमर धरुक ताहार तान

और वेदना में प्रिय के नाम का माधुर्य कुछ ऐसा है—

सइ, केवा शुनाइले श्याम नाम
कानेर भितर दिया मरमे पशिल गो आकुल करिल मोर प्राण
न जानि कतेक मधु श्याम नामे आछे गो वदन छाड़िते नहि पारे
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो केमन पाइब सइ तारे

परन्तु विद्यापति में भी कितने ही पद इस प्रकार के मिल जाते हैं—

(१) माधव हमर रटल दुर देश
केओ न कहइ सखि कुशल सन्देश
युग युग जिवथु बसथु लख कोस
हमर अभाग हुनक कोन दोस

(२) चिर दिने से विहि भेल अनुकूल रे
दुहु मुख हेरइते दुहु से आकुल रे
बाहु पसारिया दुहे दुहु धरु रे
दुहु अधरामृते दुहु मुख भरु रे
दुहु तन काँपइ मदन उछल रे
किं किं किं परि किङ्किणी सचल रे
जतहि स्मित नव वदन मिलल रे
दुहु पुलकावलि ते लहु लहु रे
रसे मातल दुहु बचन खलल रे
विद्यापति कह रससिन्धु उछलल रे

प्रेमी के दुःख-सुख की अनेक अवस्थाओं को विद्यापति ने अत्यन्त सहानुभूति से देखा है। नायक-नायिका विलग हो रहे हैं। कवि कहता है—

विछोह विकल भेल दुहुक परान, गर गर अन्तर झरए नयान।
दुहु-मने मनासिज जागि रह, तिल बिरसन नेंह केहु काहू॥
निशब्द सूतल नींद नहि आयउ वियोग वियाधि विथरल गाय।
दुदुक दुलह नेह दुहु भलजान, दुहु जन हृदय हने पचवान॥
कवि शेखर जान यह रस रंग, पर बस प्रेम सतत नइ भंग।

कृष्ण-विरह में व्याकुल गोपा वियोग-यातना से अधीर हो कर इस तरह चिंतन करती हैं—

हरि मथुरा पुर गेल, आज गोकुल शून भेल।
रोइत पिअर शुके, धेनु धावइ मथुरा मुखे॥
अब सोइ यमुना कूले, गोप गोपी नहिं बूले।
सामरे तेजब परान, आन जनमे होयब कान॥
कानु होयब जब राधा, तब जानक बिरहक बाधा।
विद्यापति कह नीत, तब रोदन होए समुचीत॥

इसी प्रकार एक दूसरा पद यों है—

एरु दिन हृदय हरण छल अबे सब दुर गेल रे
रॉकक रतन हेड़ाएल जगतेओ सुन भेल रे
विहि निरदय कोने दोसें दहुँ देल दुख मन मध रे
मन कर गरल गरारिए प्रान आतम बध रे
जीवन लाग भरन मन भरन सोहावन रे

मिलन का स्वर्गीय उल्लास और विरह की मर्मांतिक वेदना दोनों के चित्रण करने में विद्यापति अपूर्व हैं। उनके द्विरुमक रचनाएँ अन्य साहित्यों के बड़े-बड़े कवियों के सामने रखी जाती हैं। नायक ने नायिका से विदा माँगी। कवि नायिका की दुःखानुभूति का वर्णन करता है—

रामा हे से किम बिछरल जाइ
करे धरि माथुर अनुमति मगइते ततहि पड़इल मुरछाइ
किछु गदगद सो लहु लहु आखरे जे किछु कहल वर रामा
कठिने कहे पर हेलि चलि आओल चित रहल सोइ ठामा

युगल प्रेमियों की विरहावस्था का वर्णन है—

बिछोह विकल भेल दुहुक परान, गर गर अन्तर भरए नयान।
दुहु मने मनहिल लागि रहू, तिल बिछरन नहैं केहु काहू॥
निशबहे सूतल नींद नहिं आय, वियोग वियाधि वियारल गाय।
दुहुक दुलह नेह दुहु भल जान, दुहु जन मिलने मथय पचवान॥
कवि शेखर जान यह रस रंग, परवस प्रेम सतल सह भंग।

परन्तु विद्यापति नायक-नायिकों के मिलन, भाव-मिलन; और विरह तक ही नहीं रह जाते, वे आगे बढ़ कर भारतीय काव्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए इनके केलि-विलास का भी अद्वितीय वर्णन करते हैं। कदाचित् कालिदास को छोड़ कर इनकी समता नहीं हो सकती।

सुरति का एक दृश्य है—

सुरत समापि सुतल वर नागर पानि पयोधर आपी।
कनक सम्भु जनि पूजि पुजारी धएल सरोरुह झाँपी॥
सखि हे माधव केलि विलासे
मालति रमि अली नाह अगोरथि पुनुरति रंगक आसे
वदन मेराए धएलीन्हि मुख मण्डल कमल मिलल जनु चन्दा
भमर चकोर दुअओ अरसाएल पीठि अमिअ मकरन्दा

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने प्रेम की प्रत्येक अवस्था का मार्मिक चित्रण किया है और उनका प्रत्येक चित्र अद्वितीय है। विद्यापति का काव्य-वैभव किसी भी प्रेम कवि के काव्य-वैभव से कम नहीं है। उन्होंने प्रेमी जीवन के प्रत्येक उतार चढ़ाव को अत्यन्त समीप से देखा है। जैसा हम अन्यत्र कह

चुके हैं, वे रीति शास्त्र के पंडित थे और संस्कृत काव्यों, मुक्तकों और महाकाव्यों के ज्ञातक। इसलिये उनके अधिकांश गीति-साहित्य का आधार रीति-शास्त्र और प्राचीन मुक्तक हैं। परन्तु सारा प्रेमी जीवन तो इनमें सिमट नहीं आता। जो नायिका भेद, वयः सन्धि, रति-प्रसंग आदि शास्त्रीय उपकरणों के बाहर रह जाता है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, भले ही साहित्य-मर्मज्ञ एवं शास्त्र-पंडित उसकी अवहेलना करें। प्रेम के अभ्यान्तर का इन्हीं अङ्गों से सम्बन्ध है और केवल रीति-अनुमोदित प्रेम-वर्णन में इनका स्थान नहीं होता। परन्तु विद्यापति ने इन अनुभूतिमय प्रसंगों को अपने काव्य में स्थान देकर उसके प्रेम-पक्ष को पूर्णता प्रदान की है।

विद्यापति के कृष्ण-काव्य की विशेषता यही है कि उसमें सूरदास आदि हिन्दी भक्तों के काव्य की तरह किसी प्रकार भी आध्यात्मिकता का चित्रण नहीं है। राधाकृष्ण लौकिक नायक नायिका से ऊपर नहीं उठ पाये हैं। कदाचित् कवि का अभिप्राय भी यही था। यह सब होते भी वह राधाकृष्ण को पूर्णतयः लौकिक नायक-नायिका नहीं बना पाया है। विद्यापति कृष्ण को 'पहु' (प्रभु) आदि भक्ति-परक नामों से स्मरण करते हैं। और इस प्रकार उनके चाहते न चाहते एक प्रकार की वह आध्यात्मिकता उनके भी राधा-कृष्ण काव्य में आ जाती है जो पूर्ववर्ती पुराणों और परवर्ती कवियों और आचार्यों ने उपस्थित की है। उस युग में बंगाल में राधा-कृष्ण-भक्ति पर्याप्त मात्रा में प्रचलित हो गई थी। मैथिल प्रान्त में, पर्वतों की तलहटी में, राधा कृष्ण के प्रेम मिलन और विरह विषयक गीत 'कृष्णधमाली' और 'शुक्लधमाली' के रूप में चल रहे थे। सच तो यह है कि राधा-कृष्ण के तीन पक्ष हैं; काव्यमय, धार्मिक और आध्यात्मिक। इनका विकास भिन्न-भिन्न समयों में हुआ।

इस विकास-क्रम को समझे बिना हम विद्यापति के काव्य की उपयुक्त वीथिका नहीं दे सकते।

यह हम सब जानते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और भागवतादि ग्रन्थों में उनके जिस चरित्र का वर्णन है (अतिप्राकृत बातों को हटा कर) वह ठीक ही है। परन्तु प्रेमकाव्यों एवं मुक्तकों में कृष्ण का जो रूप मिलता है उसके पीछे इतिहास का कोई अनुमोदन नहीं है। जहाँ तक कल्पना जाती है राधा-कृष्ण और गोपियों की प्रेम-गाथा व्रजभूमि में प्रचलित रही होगी और उसी को आश्रित बना बनाकर लोक-गीतों और संगीतोपयोगी गीतों का निर्माण हुआ होगा। यह कथा किसी प्रकार मिथिला और बिहार होती हुई बंग देश में भी पहुँची होगी। यहाँ उसे धार्मिक और साहित्यिक रूप दिया गया। धार्मिक रूप पुराणों और उपनिषदों में मिलता है; साहित्य में कृष्ण-राधा के केलि-विलास का पहिला परिचय गोवर्धननाथ और जयदेव की रचनाओं में पहली बार मिलता है। यहाँ हम देखते हैं कि राधा-कृष्ण की प्रणय-केलि को उसी प्रकार मंगलगान के रूप में रखा गया है जिस प्रकार प्राचीन संस्कृत शास्त्र में शिव-शिवा को स्वीकार किया गया है। उसी प्रकार यहाँ साहित्य में पहली बार राधा-कृष्ण को प्रयोग किया गया है। यह स्पष्ट है कि उस समय तक (१२वीं श०) राधा-कृष्ण को हर-पार्वती को स्थान मिल चुका था। अब हमें यह देखना है कि हर-पार्वती का क्या स्थान था? (१) हर-पार्वती धार्मिक जगत में देवी-देवता थे, १२वीं शताब्दी तक राधा-कृष्ण भी देवता स्वीकृत हुए। (२) कवि हर-पार्वती के क्रीडा-विलास को मुक्त-मुख वर्णन करते हैं यहाँ तक कि अत्यन्त उच्छृंखलता से उनके मंगलाचरण में भी यही रूप प्रतिष्ठित है। कालान्तर में यही रूप राधा-कृष्ण

का मिला। स्वयं हर-पार्वती का यह रूपतांत्रिकों की कृपा का फल है। पहले धारणाओं में ध्यान लिए युग्म के वामनामय चित्र लिये गये; इस प्रकार धार्मिक मंत्रों और कृत्यों से विलास-क्रीड़ा का गठबन्धन हुआ। जगन्नाथपुरी के मन्दिर के आसन-चित्र इसी मनोवृत्ति का फल हैं। जो हो, संस्कृत के इन कवियों (गोवर्धन और जयदेव) को राधा-कृष्ण का शृङ्गारी रूप खड़ा करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने केवल राधा-कृष्ण को प्राचीन शिव-शिवा का स्थान भर ही दे दिया। यही अलम् था।

विद्यापति तक पहुंचने तक न राधाकृष्ण-काव्य ही अधिक विकसित हो पाया था, न उनका कथा-रूप ही निश्चित हो सका था। विद्यापति के सामने पुराण थे और जयदेव का काव्य। उन्होंने कुछ कृष्ण-कथा को इनसे ग्रहण किया, कुछ गर्गसंहिता जैसे ग्रन्थों के आधार पर स्वयम् गढ़ा। जयदेव के काव्य की भाषा, भाव, विषय और शैली ने उनका पद-पद पर नेतृत्व किया, परन्तु उन्होंने कथा के ढाँचे, विषय-निर्वाह, विषय-विस्तार और भावना-वैचित्र्य की दृष्टि से अनेक मौलिक उद्भावनाएँ उपस्थित कीं। वे संस्कृत साहित्य के पंडित थे, उन्हें अपने काव्य को मुक्तक का रूप देना था, अतः वे संस्कृत मुक्तकों के प्रभाव से भी नहीं बच पाये। यह बातें अनेक उदाहरण देकर ठीक सिद्ध की जा सकती हैं। जैसे अमरुक के ये पद

१ तद्वक् त्राभिमुख मुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयोः।
तस्यालाय कुतूहल तरे श्रोत्रे निरुद्धे मया॥
पाणिभ्याम्य तिरस्कृतः स्पुलकः स्वेदोद्गयोद् गराडयोः
सख्यः किं करवाणि यान्ति शत धायत् कंचुके सन्धयः

आलोलामलकावली विलुलितां बिभ्रचलत् कुण्डलं ।
किञ्चिन् मृष्ट विशेषक तनु तरैः स्वेदाम्भसः शीकरैः
तन्वया यत् सुरतान्ततान्त नयनं वक्रिम रतिव्यत्यय:
तत्वां पातु चिराय किं हरिहर ब्रह्मादिभिर्देवतैः

कुछ परिवर्तन कर देने पर विद्यापति ने इस प्रकार लिख दिये हैं—

१ अवनत आनन कए हमें रहलिहुँ वारल लोचन चोर।
पिया मुख रुचि पिबय धाओल जानि से चान्द चकोर॥
ततहु सञो हठे हठि मोञे आनल धाएल चरन राखि।
मधु के मातल उड़ए न पारए तइओ पसारए पाँखि॥
माधव बोलल मधुर बानी से सुनि मुँदु मोञ कान।
ताहि अवसर ठाम वाम भेल धरि धनुष पचवान॥
तनु पसेव पसनिहनि वासलि तइसन पुलक जागु
चुनि चुनि भए कांचुअ फाटलि बाहु वलाय भाँगु

२ विगलित चिकुर मिलित मुख मण्डल चान्दे वेढ़ल घनमाला
मणिमय कुण्डल स्रुवने दुलित भेल धामे तिलक वहि गेला
सुन्दरि तुअ मुख मंगलदाता।
रति विपरीत समर तहि राखवि कि करब हरिहर धाता॥
किंकिन किनि किनि कंकन कन कन घन घन नूपुर बाजे
रति रणे मदान पराभव मानल जय जय डिंडिम बाजे

केवल मुक्तक कवि ही नहीं, पंडित विद्यापति की दृष्टि जिस श्रेष्ठ काव्य की ओर उठ गई उसी से उन्होंने अपनी सामग्री ले ली और अपनी प्रतिभा की छाप देकर उसे साहित्य के बाजार में उपस्थित किया है जैसे भारवि का यह श्लोक

तिरोहितान्तानि नितान्त माकुलै रपां विगाहा दलकैः प्रसारिभिः
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफ वृन्दान्तरितैः सरोरुहैः

विद्यापति के इस पद में प्रतिबिम्बित है

जाइत पेखल नहाइल गोरी। कति सजे रूप धनि आनलि चोरी
अलकहिं तीतल तेहि अति सोभा। अलिकुल कमले वेढ़ल मधु लोभा

और माघ और विद्यापति की इन पंक्तियों में

वासांसि: न्यवसत यानि योषितस्ताः शुभ्राद्युतिभिरहासितैर्भुदेव।
अत्याक्षुः स्नपन गलज्जलानि यानि स्थूलाश्रु स्रुति भिररोदितैः शुचेन॥
सजल चीर रह पयोधर सीमा, कनक-बेलि जनि पड़ि गेल हीमा।
ओ नुकि करतहि चाहे किम देहा, अबहि छोड़ब मोहि ते जब नेहा॥
ऐसन रस नहि पाओव आरा, इथे लागि रोइ गलय जल धारा॥

स्पष्ट रूप से भाव-साम्य है। यही नहीं, कवि ने पग-पग पर अपने अगाध संस्कृत काव्य-ज्ञान का सहारा लिया है। यही कारण है कि उनकी उपमाएं कालीदास की उपमाओं से टक्कर लेती हैं और उनकी कल्पना में मोह नहीं है। हम अन्य स्थान पर कह चुके हैं कि विद्यापति के काव्य वैभव का बहुत कुछ श्रेय उनके रीति-शास्त्र-ज्ञान को है। परन्तु यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि उनके पांडित्य ने उनकी कल्पना में चार चाँद लगा दिये हैं और उनके काव्य को वाग्वैदग्ध्य, कला एवं चमत्कार से विभूषित किया है। कहाँ-कहाँ से, विशाल संस्कृत काव्य के किन रत्नों से, किन भावकोषों से उन्होंने अपने लिए विषय और उनके निर्वाह के प्रसंग निकाले, यह लम्बी खोज का विषय है, परन्तु यहाँ इस खोज को छोड़ना ही पड़ेगा। परन्तु कालिदास, हर्ष प्रभृति महाकवियों की छाया ढूँढ़ने में देर नहीं लगेगी। संस्कृत साहित्य में कालीदास उपमा-अलंकार के बादशाह कहे जाते हैं। "उपमा कालिदासस्य"। परन्तु स्वयं विद्यापति उनसे किसी प्रकार कम नहीं है। हिन्दी साहित्य में उनका जोड़ मिलना ही कठिन

है (संस्कृत कवियों के प्रभाव के लिए विस्तृत उल्लेख देखिए, विद्यापति काव्यालोक, विषय प्रवेश विद्यापति और संस्कृत कवि)

यह स्पष्ट है कि विद्यापति ने राधाकृष्ण के लौकिक प्रेम का ही चित्रण किया है। वह आदर्श प्रेमी नर-नारी के विरह-मिलन की कथा है। उनके काव्य में कुरुक्षेत्र के गीता ज्ञान दाता, महाभारत के ऐतिहासिक व्यक्ति, साधारण नायक-नायिका के रूप में हमारे सामने पहली बार आते हैं। जयदेव की कथा खण्ड-काव्य है; उसमें प्रेमी जीवन की इतनी परिस्थितियाँ नहीं हैं जितनी विद्यापति के काव्य में। परन्तु तीव्रता, उल्लास, कातर वेदना और कष्ट-सहन में अद्वितीय होकर भी यह प्रेम परकीय नहीं है। कृष्ण-राधा के 'पहु' (प्रभु) है, पति हैं। ये नागर हैं, वे नागरी हैं। अतः परकीया प्रेम की गर्हित भावना विद्यापति के पदों में है। राधा का प्रेम स्वकीया का आत्मसमर्पण है, विश्वासपूर्ण आत्मदान है। इसी से इसे सरलता से भक्ति-पक्ष में डाला जा सकता है और एक बड़ी जमात में विद्यापति के काव्य को इसी दृष्टिकोण से देखा भी गया है। इस भक्ति का रूप मधुर भक्ति है। भक्त का निःस्वार्थ एकांत आत्मसमर्पण—यही मधुर भाव की भक्ति है। निःसंग रह कर नहीं, प्रेम में घुल कर, रंग में डूब कर। राधा का कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण आत्मा के परमात्मोन्मुख होने का प्रतीक है। "तातल सैकत बारि बिन्दु सम सुतमित रमणि समाजे" यह तो भक्ति परक है ही। परन्तु पदावली में भी मधुर भक्ति ध्वनित की जा सकती है और राधा-कृष्ण की भावना को जीवात्मा-परमात्मा का रूपक बनाया जा सकता है। साहित्य की राधा की अनन्य दाम्पत्य भक्तिपक्ष में भक्त का आत्म-विक्षेप बन जाता है।

परन्तु हमें यह मान लेना पड़ेगा कि विद्यापति ने अपना रचना को उस दृष्टि से नहीं देखा होगा जिस दृष्टि से उनके पदों को चैतन्य ने देखा। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका वातावरण, उनके संस्कार इसके प्रमाण हैं। परन्तु कालान्तर में कृष्ण-भक्ति की धारा ने उनके पदों को अपना लिया और जिस प्रकार मंदाकिनी के जल में पड़ कर सब कुछ गंगाजल हो जाता है उस प्रकार परवर्ती युग में ये पद भी पूत धर्म-गीत हो गये। ऐसा इसलिए हुआ कि वातावरण इसके लिए तैयार था, भक्ति-सूत्र और श्रीमद्‌भागवत की साक्षियाँ सामने थीं—

यथा व्रजगोपिका नाम्

(नारदभक्ति सूत्रः)

षष्ठि वर्ष सहस्राणि तपस्तप्तं मया पुरा।
नन्द गोप व्रजस्त्रीणां पाद रेणूप लब्धये॥

(श्री मद्‌भागवत)

आदि पुराणों में स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने कहा है

मन्याहात्मयं मत्सपर्य्या मच्छ्रद्धां मन्यनोगतम्।
जानान्ति गोपिका पार्थ! नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

इसी से जब जयदेव ने गीत गोविन्द में लिखा—

धीरे समीरे यमुना तीरे बने वसत वनमाली
गोपी पीन-पयोधर मर्दन-चञ्चल कर युगशाली

तो उन्होंने अनायास ही भक्तों के हृदय को छू लिया। वह चिल्ला उठे—यही तो रहस्य है, यही उपासना है, ऐसी ही एकान्त-निष्ठा चाहिए, गोपी भाव ही पूजा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि विद्यापति का प्रेम काव्य प्राकृत है, आध्यात्मिक अथवा धार्मिक चेतना उसके मूल में शून्य के बराबर है, तथापि हम उसे मधुर भक्ति के अन्यतम उदाहरण और गोपी-भावा भक्तों के लिए धर्म-काव्य भी कह सकते हैं।

११

विद्यापति के काव्य में रहस्यवाद

विद्यापति के कृष्ण काव्य ने हमारे साहित्यालोचकों के सामने एक समस्यापूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। उसके तीन हल हमारे सामने हैं—१ उसकी अंतःधारा कृष्ण भक्ति है। २—वह शृंगार काव्य मात्र है जिसमें धर्म या अध्यात्म की भावना नहीं है। ३—वह स्त्री-पुरुष (राधाकृष्ण) के प्रेम के रूप में जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का प्रतीक उपस्थित करता है। तीनों मतों में मूलतः विरोध जान पड़ता है और इनमें से प्रत्येक का समर्थक अपने मत के प्रति बड़ा पक्षपात रखता है।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—'आध्यात्मिक रंग के चश्मे आज कल बहुत सस्ते हो गये हैं। उन्हें चढ़ा कर जैसे कुछ लोगों ने गीत गोविन्द के पदों में आध्यात्मिक संकेत बताया है वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। इस सम्बन्ध में यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि लीलाओं का कीर्तन कृष्ण-भक्ति का एक प्रधान अंग है। जिस रूप में लीलाएँ वर्णित हैं उसी रूप में उनका ग्रहण हुआ है और उसी रूप में वे गोलोक में नित्य माने जाते हैं, जहाँ वृन्दावन, यमुना, निकुंज, कदम्ब, सखा, गोपिकायें इत्यादि सब नित्य रूप हैं। इन लीलाओं का दूसरा अर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं।[1]"

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ७१

डा० रामकुमार वर्मा और भी आगे बढ़ जाते हैं—"उन्होंने शिव-सम्बन्धी जो पद लिखे हैं वे तो अवश्य भक्ति से ओत-प्रोत हैं—किन्तु श्रीकृष्ण और राधा सम्बन्धी उन्होंने जो पद लिखे हैं उनमें भक्ति न होकर वासना है। इस क्षेत्र में जयदेव की शृंगार भावना ने विद्यापति को बहुत अधिक प्रभावित किया है[२]।" कुमारस्वामी और जनार्दन मिश्र विद्यापति के पदों से रहस्यात्मक अर्थ निकालते हैं। कुमार स्वामी का कहना है—कुमार स्वामी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने विद्यापति को इस दृष्टि-कोण से देखा है। उनके मत का खंडन करते हुए श्री विनय-कुमार सरकार ने लिखा है "राधा कृष्ण साहित्य की पार्थिवकता, शारीरिक सौन्दर्य के वर्णन, नारी-हृदय की दुर्बलताओं, मान-वीय अपूर्णता, संसार के कर्दम-कलुष और ऐन्द्रियता के चित्रों को हम किसी भी प्रकार भुला नहीं सकते, उनकी संख्या इतनी अधिक है। सच यह है कि विद्यापति के संसार में इन्द्रिय-जन्य आनन्द के सिवा और कोई आनन्द है ही नहीं।

इस बात को श्री कुमार स्वामी ने समझा है, परन्तु उन्होंने हिन्दू नैतिक धारणाओं, कौटुम्बिक व्यवहार-सम्बन्धी हिन्दू विचार और वैष्णव विचार-धारा के परम्परागत अर्थ द्वारा उस कलंक को धो डालने की चेष्टा की है। वे इस प्रयत्न में पूर्णतः असफल रहे हैं......।" डा० जनार्दन मिश्र का मत है—"विद्यापति के समय में रहस्यवाद का मत जोरों पर था। उसके प्रभाव से बच कर निकलना और किसी अधिक निष्कंटक मार्ग का अवलम्बन करना इन्हें शायद अभीष्ट न था अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति इनमें न थी। इसीलिए स्त्री और पुरुष

[२] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५९१

के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी उसमें इन्होंने अपने को बहा दिया है।[२]" "ईश-भक्ति सम्बन्धी पद-रचना में कुछ भेद है। निर्गुण रहस्यवाद और इनके रहस्यवाद में कुछ भेद हैं। जो निर्गुणवादी होते हैं वे जीवात्मा और परमात्मा को स्त्री-पुरुष के रूप में देखते हैं, किन्तु वह स्वरूप किसी व्यक्ति विशेष या रूप-विशेष का द्योतक नहीं होता। वह स्त्रीत्व और पुरुषत्व भाव-सम्बन्ध का केवल वर्णनात्मक रूप होता है।

The earthly element, the physical beauty, the '*dirt*', the 'dust', the 'imperfection', 'the heart of a woman,' 'the human lone, the pleasure of sense,' are too many to be ignored. Really it is impossible to recognise any other pleasure in the world of Vidyapati. Coomarswamy feels this and has tried to white wash it according to his ideas of Hindu morality, Hindu Standard of domestic decorum, the Hindu traditional interpretation of Vaisnava thought. The attempt has been a huge failure and has imported to his inproduction an air of duplicity and insincerity.

(Love in Hindu Lateratur e
P. 47—48)

विद्यापति इस सिद्धान्त का अवलम्बन कर ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध को अनुभव करते थे। हिन्दू शास्त्रों के पंडित होने

---

[२] विद्यापति पृ० ४७

और उनमें श्रद्धा और विश्वास रखने के कारण उन्हें रहस्य-वाद के सिद्धान्तों को राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, सीता-राम अथवा जीवात्मा-परमात्मा की साधारण स्थिति के वर्णन द्वारा अनुभव करने और कराने में किसी प्रकार की शंका नहीं होती थी"। उन्होंने शिव सम्बन्धी तीन पद उद्धृत किये है—

(१) कोन बन वसथि महेस।
केओ नहि कहथि उदेस॥
तपोवन वसथि महेस।
भैरव करथि कलेष॥
कान कुंडल हाथ गोल।
ताहि बन पिआ मिठि बोल॥
जाहि बन सिकिओ न डोल।
ताही बन पिआ हसि बोल॥
एकहि वचन बिच मेल।
पहु उठि परदेस गेल॥

(कवि का प्रश्न है—परब्रह्म का निवास स्थान कहाँ है, इसे कोई नहीं जानता। उसकी अन्तरात्मा कहती है—तप में। ब्रह्म तपोमय है। शंकर तप कर रहे हैं। उनके कानों में योगियों का कुंडल है और हाथ में भिक्षा-पात्र है। जिस घोर तपश्चर्या में समाधि की अवस्था में चित्त-वृत्तियों का नितांत निरोध हो जाता है, उसी में भगवान भक्त के अत्यन्त निकट होकर उससे हंसते-बोलते हैं, परन्तु जहाँ साधक के हृदय में किंचित भी अहंकार उत्पन्न हुआ, एक वचन का भी अन्तर पड़ा कि यह अनुभव गया। भक्त और भगवान के बीच में अहंकार बाधा-रूप है।)

(२) हम उन है बलि रूसन महेस।
गौरि विकल मन करयि उदेस॥
तन आभरन बसन भेल भार।
नयन बहे जल निर्मल धार॥
पुछै ही पंथुक जन इव तोहि।
रगहि बाटे देखल बूढ़ बटोहि॥
अंग में यिकैन्हि विभूति सरूप।
की कहब प्रभु केर सुन्दर रूप॥
कवि विद्यापति यह पद भान।
शिव जी प्रगट भेला गौरिक ध्यान॥

(गौरी या जीवात्मा के मन में ऐसी शंका हुई है कि मुझसे कोई अपराध हो गया है। इसलिए महेश या परमात्मा मुझसे रुष्ट हो गये हैं। विकल होकर गौरी महेश को खोजने लगी आदि)

(३) भगवान रामचन्द्र को लेकर रहस्यवाद की स्थापना—

विहिं मोर परसन भेल।
रघुपति दरसन देल॥
देखलि बदन अभिराम।
पुरल सकल मन काम॥
जागि उठल-पयो बान।
बधि नहि रहल गेआन॥
भनहिं विद्यापति भान है।
सुपुरुप न कर निदान है॥

(विधाता मेरे ऊपर प्रसन्न हुए। रघुपति का मुझे दर्शन मिला। उस सुन्दर मुख को मैंने देखा। हृदय की सभी लालसाएँ पूरी हो गई। कामदेव के पाँचों बाण मानो एक साथ ही प्रगट हो गये। मुझे कुछ भी अपनी सुध बुध न रही।

विद्यापति कहते हैं कि सज्जन पुरुष किसी बातको अंतिम दशा तक नहीं पहुँचाते।)

(४) साधारण रहस्यवाद—

एक दिन छलि नवरीति रे
जल मिन जेहन पिरीति रे
एकहिं बचन बिच भेल रे
हँसि पहु उतरो न देल रे
एकहिं पलंग पर कान्ह रे
मोर लेख दुर देस भान रे

(एक दिन ऐसा था जब जल और मीन की तरह हम लोगों में प्रगाढ़ प्रीति थी जिसका नया-नया स्वरूप नित्य प्रकट होता था। केवल एक बात का अन्तर हो गया और हंस कर प्रभु ने उत्तर भी नहीं दिया। यह जीवात्मा में अहंकार की उत्पत्ति हुई। कृष्ण एक ही पलंग पर हैं पर मालूम पड़ता है जैसे दूर देश में हैं। यहाँ पलंग से मतलब शरीर से है। जीवात्मा और परमात्मा का निवास और परस्पर अनुभव शरीर के भीतर ही होता है। साधक जीव उसे इसी पलंग पर पा लेते हैं परन्तु जो मोह-ग्रस्त है उसे परमात्मा का अनुभव भी नहीं होता। निकट होने पर भी वह उसके लिए बहुत दूर होता है।)

अपनहिं नागरि अपनहिं दूत।
से अभिसार न जान बहूत
की फल तेसर कान जनाए
आनन नागर नयन बभाये
ए सखि राखहिबि अपनुक लाज
परक दुआरें करह जनु काज

परक दुआरे करिअ जओं काम
अनुदिन अनुखन पाइय लाम
दुहु दिस एक सओं होइके विरोध
तकरा बड़ाइते कतए निरोध

(कवि कहता है—हे सखि, हे जीवात्मा, तू आप ही नायिका है आप ही दूती है। तेरा जैसा अभिसार है वह अपूर्व और अलौकिक है। तात्पर्य यह है कि आत्मा और परमात्मा के बीच में किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं। तीसरे व्यक्ति को अर्थात् दूती को अपने हृदय की बात बताने की आवश्यकता ही क्या है। लो, नायक आ गया। अपने नयन की तृप्ति करो। परमात्मा के अनुभव के बाद भी जब जीवात्मा संसार में लिप्त रहती है तो कवि व्यथित होकर कहता है—हे सखि अपनी लाज रखो। पराये द्वार पर टहल मत करो। पराये द्वार पर जो टहल करता है उसे क्षण-क्षण लांछित लेना पड़ता है। उसका दोनों दिशाओं से एक सा विरोध होता है अर्थात् ऐसी अवस्था में न परमात्मा ही प्रसन्न होता है न संसार ही। इसमें क्या बड़ाई ? यह विरोध किस लिए ? इस उक्ति से कवि जीवात्मा को परमात्मा की ओर उन्मुख करना चहाता है।)

जहाँ तक उन कुछ पदों का सम्बन्ध है जिन्हें हमने अवतरण के रूप में दिया है या जो डा० जनार्दन मिश्र ने "विद्यापति" में संग्रहीत किये है, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि एक प्रकार का रहस्यवाद उनमें है जिसमें जीवात्मा और परमात्मा की कल्पना स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के रूप में की गई है। इस रहस्यवाद को सामने रखने में कवि ने पौराणिक देवताओं और अवतारों की ओट ली है। फिर भी यह रहस्य-वाद लगभग निर्गुण श्रेणी का है और उस पर योग धारा का प्रभाव लांक्षित है। परन्तु इस प्रकार के पद विद्यापति के

प्रतिनिधि पद नहीं हैं। उनकी संख्या बहुत कम है। अधिकाश पदावली कृष्ण-लीला से सम्बन्धित है जिसमें राधा-कृष्ण को ही स्थान मिला है, गोपियों को नहीं। उसमें भक्ति-भाव परोक्ष या उपरोक्त रूप में कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ता वरन् उस पर रीति-शास्त्र का प्रभाव है। मैथिल कोकिल विद्यापति व्रज नन्दन सहाय) और विद्यापति की पदावली (रामवृक्ष शर्मा) दोनों संग्रहों में विद्यापति को इसी रूप में उपस्थित किया गया है। उनके शीर्षक शृंगार-रसान्तरगत नायिका-भेद के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालते हैं। यह सम्भव है कि कवि ने अधिकांश पद उस क्रम से न लिखे हों जिस क्रम से वे इन संग्रहों में संग्रहीत हैं, उसके ठीक-ठीक दृष्टिकोण का पता इनसे न लगे, परन्तु यह अवश्य है कि राधा-कृष्ण की लीला गान को सामने रखते हुए भी कवि ने शृगार-शास्त्र का अधिक सहारा लिया है। अनेक पद इतने स्थूल एवं लौकिक हैं कि उनमें किसी प्रकार भी आध्यात्मिक रूपक की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। सच तो यह है कि कृष्ण-काव्य में एक बार लीला को आध्यात्मिक एवं अलौकिक स्वीकार करने के बाद कवि किसी निश्चित रूपक-पद्धति के आश्रित होकर नहीं चलते हैं और परोक्ष रूप से चाहें हम प्रतीक ग्रहण कर लें, चेतन रूप से कवि के मन में यह प्रतीक-भावना स्पष्ट रूप से उपस्थित रहे तो लीला द्वारा आनन्द-प्राप्ति में एक बड़ा व्याघात आ खड़ा हो। यह बात भक्ति-शास्त्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। भक्ति-शास्त्र में जहाँ कथा के पीछे रूपक खड़े भी किए गये हैं वहाँ भी उनका महत्व गौण है और लीला-रस की प्राप्ति ही मुख्य ध्येय है।

अतः विद्यापति के काव्य का अध्ययन करते हुए हमें यह समझ लेना चाहिये कि विद्यापति की सामान्य वृत्ति क्या है

और उन्होंने कहाँ तक गौण रूप से अपने समय की अन्य लोक धाराओं को ग्रहण किया है। मिथिला और हिन्दी का पूर्वी प्रदेश प्रागैतिहासिक काल से निर्गुण रहस्यवादी धारा के केन्द्र रहे हैं। उपनिषदों, सिद्धों, नाथों में होकर यह धारा मध्य काव्य के संत कवियों में आई है। अब भी ये प्रदेश रहस्यवादी योगियों और संतों के केन्द्र हैं। अतः थोड़ा बहुत रहस्यवाद इस प्रदेश में चलता ही रहा है। कवि ने उसे ग्रहण किया है। सम्भव है उनके हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन ने इस प्रवृत्ति को उत्तेजना दी है। परन्तु मूल रूप से विद्यापति आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी कवि नहीं है। वह लीला-कवि है। उन्होंने जयदेव का पथ ग्रहण किया है और राधा कृष्ण की मधुर लीला को काव्य का विषय बनाया है। अपने लीला-गान को उन्होंने रीति के सिद्धान्तों से पुष्ट किया है और राधा के नायिका-रूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कदाचित् वृद्धावस्था में उन्होंने अपने कुल-देवता शिव की भक्ति की है और वैराग्य का अनुभव किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मिथिला में प्रचलित शक्ति-पूजा को स्थान दिया है और वैष्णव भक्त की तरह गंगा की भी स्तुति की है। वास्तव में उन्होंने अपने समय के मिथिला के सब भक्ति-पंथों का प्रतिनिधित्व किया है। "भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय की प्रधानता रही, पर मिथिला में ऐसा कभी नहीं हुआ। अपनी ठोस विद्या-बुद्धि के बल से यह अबाध मंथर गति से अपना कार्य करता रहा। यही कारण है कि मैथिल समाज में देव-देवियों के भेद से किसी प्रकार की कट्टरता का प्रचार नहीं हुआ और इस समय भी इनकी यही मनोवृत्ति है। किसी मैथिल को पूजा करते हुए देख कर यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है।"

विद्यापति का युग जहाँ वैष्णव भक्ति (कृष्ण-भक्ति) के आरम्भ का युग था, वहाँ रहस्यवादी निर्गुणियों के उत्थान का भी युग था। साथ ही उस समय साहित्य में भक्ति की प्रधानता नहीं थी, शृंगार रस की ही प्रधानता थी एवं उन रीति शास्त्रों का निर्माण हो रहा था जो पूर्ववर्ती विलासमूलक संस्कृत-साहित्य पर आश्रित थे और जिन्होंने परवर्ती हिन्दी काव्य (भक्ति और रीति-काव्य) दोनों को प्रभावित किया। इसी समय ध्वनि-काव्य की महत्ता की प्रतिष्ठा हुई थी, ऐसी दशा में विद्यापति के काव्य में रीति-पद्धति को विशेष महत्वपूर्ण आश्रय मिला जिसने एक प्रकार से उनके कार्य (लीला-गान) को सरल कर दिया। उन्होंने लीला के लिए राधा को नायिका के रूप में स्वीकार करके उसके विशेष व्यक्तित्व के निर्माण का भार सूर पर छोड़ दिया।

विद्यापति के कृष्ण-काव्य के पदों में से भी कुछ ऐसे पद ढूँढ़े जा सकते हैं जिनमें शृंगार के आवरण में लिपटे हुए रहस्यमय संकेत मिलेंगे। उदाहरण के लिए नख-सिख सम्बन्धी पद—

साजन, अकथ कही न जाए

अचल अरुण ससि गण केर मण्डल भीतर रहए लुकाए
कदली ऊपर केसरि देखल केसरि मेरु चढ़ला
ताही ऊपर निसाकर देखल फेर ता ऊपर बइसला
करि ऊपर कुरङ्गिनि देखल भयर ऊपर फनी,
एक असम्भव अउर देखल जल ऊपर अरविन्दा
बेवि सरोरुह ऊपर देखल जइसन दूतिअ चन्दा
भन विद्यापति अकथ कथा ई रस केओ केओ जान
राजा शिवसिंह रूप नरायन लखिमा देइ रमान

सम्भव है कवि स्त्री-रूप में जीव का काल्पनिक वर्णन कर रहा हो। विरह-पदों के अंत में इस प्रकार की उद्बोधन पूर्ण पंक्तियाँ जैसे

भन विद्यापति सुन वरनारि
धैरज धये रहु मिलत मुरारि

आलोचक के लिए समस्या उत्पन्न कर देती है। ऐसी पंक्तियों में कवि स्वयं नायिका का स्थान लेकर प्रभु के अनुग्रह के लिए प्रतीक्षा करता दिखलाई देता है। घोर शृंगारिक पद में अंतिम एक-दो पंक्ति द्वारा कवि धार्मिक भूमि पर उतर आता है जैसे

ऐहो विद्यापति भाने
गुंजारि भज भगवनि

या

विद्यापति कह सुनु वनितामनि तोर मुख सीतल ससिया
धन्य-धन्य तोर भाग गोत्तलिनि हरि भजु हृदय हुलसिया

इस प्रकार के पदों में कवि शृंगार-भूमि पर रहते हुए भी रहस्योन्मुख हो जाता है और धार्मिक रहस्यवाद की सृष्टि करता है।

परन्तु विद्यापति के काव्य में काव्यात्मक रहस्यवाद के अनेक उत्कृष्ट पद पाते हैं। कवि के रहस्यवाद और दार्शनिक के रहस्य-वाद में अंतर है। कवि का रहस्यवाद अनुभूति की गहराई से उत्पन्न होता है, दार्शनिक का रहस्यवाद कल्पना के लोकोत्तर विलास से। कबीर का रहस्यवाद दार्शनिक का रहस्यवाद है। उसकी कल्पना के क्षेत्र में जीव और परमात्मा का अनन्य सम्बन्ध है। विद्यापति का रहस्यवाद सहज अनुभूति की गंभीरता से उत्पन्न होता है। उसके रहस्यवाद का क्षेत्र सौन्दर्य, प्रेम और विरह की वेदना है। वह रहस्य-प्रधान है। विद्यापति

के पदों में काव्यात्मक रहस्यवाद प्रचुर मात्रा में है। सौन्दर्य और प्रेम को देखने की उनकी दृष्टि इतनी मार्मिक और तीव्र है और उनकी तद्-विषयक अनुभूति इतनी गहरी है कि हम रहस्य के ऊँचे स्तर पर उठ जाते हैं। उनके कृष्ण "स्वप्न" हैं—

ए सखि पेखली यक अपरूप
सुनइत मानबि सपन सरूप

या

कि कहब हे सखि कानक रूप
के पतियायब सपन सरूप

उनकी राधा में अपार्थिव सौन्दर्य की प्रतिष्ठा हुई है

देखो-देखो राधा रूप अपार
अपरुब के विहि आनि मिलावल खिति तले लावनिसार
अंगहि अंग अनंग मुरझायत हेरै पड़इ अधीर
मनमथ कोटि मथन करू जे जन से हिरि महि महँ गीर
कतकत लछिमी चरन तल नेउछय रंगिनि हेरि विभोर
करु अभिलाष मनहि पद-पंकज अहो निसि कोर अगोर

उनका भी प्रेम कम रहस्यात्मक नहीं है—

सखि की पुछसि अनुभव मोय
सोइ पिरीति अनुराग बखानइत तिलतिल नूतन होय
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल
सोइ मधुर बोल श्रवनहिं सुनिलों श्रुति पथे परस न गेल

अन्तिम मिलन भी सपने में होता है जिसमें वास्तविक दैहिक मिलन से अधिक तृप्ति है। सच तो यह है कि मानसिक मिलन की कल्पना स्वयम् रहस्यात्मक है—

रमठहि तइ बोलन्हि मुख कांती
पुलकित तनु मोर कत पार भांती
आनन्द मोर नयन भरि गेला

प्रेमक आंकुर अंकुर मेला
भेंटल मधुर पति सपन मों आज

विद्यापति मुख्यतः पंडित और शृंगारी कवि थे। निर्गुण मत एवं पौराणिक रहस्यवाद का प्रभाव उन पर प्रासंगिक रूप से पड़ सकता है। हमें यह स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिये कि पदावली में कई प्रकार के पद हैं:—

(१) साधारण शृंगार के पद जैसे वयःसंधि और सद्यःस्नाता के पद जिन्हें राधाकृष्ण-कथा से अलग रखकर भी आनन्द उठाया जा सकता है।

(२) राधाकृष्ण के पद जिनमें दोनों में के एक का स्पष्टतयः उल्लेख है। ये पद एक कथा को लेकर चलते हैं जिसकी रूपरेखा इस ग्रन्थ के आरम्भ में हमने स्थिर कर दी है।

(३) सांकेतिक पद जिन्हें डाक्टर जनार्दन मिश्र ने रहस्यवाद पर घटाया है। इन पदों का एक अर्थ ध्वनिशास्त्र को दृष्टि में भी रख कर किया जा सकता है जैसे—

कर पुरु, करु मोहे पारे
देव हम अपुरव हारे कन्हैया
सखि सब तेजि चल गेली
न जानु कोन पथ भेली
हम न जाएब तुअ पासे
जाएब औघट घाटे

यहाँ व्यङ्गार्थ यह लिया जा सकता है—सखियों का साथ न होना और अज्ञात पथ एकान्त निर्देश करते हैं, माधव को गले का हार देकर राधा उन्हें गले का हार ही बनाना चाहती है। स्वय हाथ पकड़ने की प्रार्थना करना आत्मसमर्पण है। यहाँ रति स्थायी भाव ही व्यंजित है। डा० जनार्दन मिश्र ने इस पद में

जीवात्मा-परमात्मा की अवतारणा की है, परन्तु व्यंगकाव्य की दृष्टि से यह पद शृंगार का ही सिद्ध होगा। सम्भव है, रहस्यवाद के कितने ही अन्य पद शृंगारमूलक ध्वनि काव्य ही सिद्ध हों। अतः जब तक उनकी इस दृष्टि से परीक्षा न हो, तब तक शैव विद्यापति को निर्गुण संत का रूप देने का आग्रह ठीक न होगा।

विद्यापति की भक्ति

विद्यापति की भक्ति से दो रूप हमारे सामने आते हैं— एक राधाकृष्ण भक्ति, दूसरी शिव-गौरी-भक्ति। दोनों का प्रकाशन इतनी भिन्न शैलियों में हुआ है कि यह आश्चर्य होने लगता है कि उनमें एक ही व्यक्तित्व है। परन्तु विद्यापति के समय की प्रवृत्ति और उस समय के साहित्य के जो प्रमाण हमें उपलब्ध होते हैं, वह इस बात की पुष्टि करते हैं।

विद्यापति का समय वैष्णव धर्म के उस पुनरुत्थान का समय था जो श्रीमद्भागवत का आश्रय लेकर चल पड़ा था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और भागवत में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन था, परन्तु साथ ही उन्हें अव्यक्त, चिरन्तन, सर्वोपरि आदि शक्ति अथवा विष्णु के रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गई थी। साधारण जनता ने दार्शनिक और आध्यात्मिक रूपक को पीछे डाल दिया और विशेष परिस्थितियों के कारण उनके सामने जो मधुर रस, शृंगाररसपूर्ण लीला रखी गई थी, उसे ही अपनाया। यह ध्यान देने की बात है कि इस सारे काल में आचार्य और विद्वान भागवत की कृष्ण-लीला में आध्यात्मिक अर्थ को स्पष्ट करते रहे और कृष्ण को मानवोपर सत्ता
रहे। भागवत दार्शनिक आचार्यों का अत्यन्त
रहा और प्रत्येक वैष्णव आचार्य ने अपने मत
पुष्टि के लिए उसे ही सहारे के रूप में

वास्तव में मध्ययुग के समस्त धार्मिक आन्दोलन भागवत में वर्णित कृष्ण-लीला पर ही आश्रित हुए थे और दार्शनिक को उनकी विवेचना करने के लिए भागवत के दार्शनिक सिद्धान्तों पर अनेक अर्थों का आरोपण करना पड़ा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भागवत का मध्ययुग का जीवन पर कितना प्रभाव था।

कवि जनता का प्रतिनिधि होता है। हिन्दी कवियों ने जनता के कृष्ण-सम्बन्धी दृष्टिकोण को अपनाया। इससे अधिक उनसे आशा करना व्यर्थ है। परन्तु इस दृष्टिकोण से ठीक न समझ कर उन पर व्यभिचार-प्रचार का दोषारोपण करना नितान्त अनुचित होगा।

कृष्ण की भक्ति का प्रधान रूप लीलागान था। "लीलावत्तु कैवल्यम्" (लीला कैवल्य अर्थात् मोक्ष है) (अणुभाष्य २-१-३२) "लीलाया एवं प्रयोजनत्वात्।" (लीला स्वयं ही प्रयोजन है)

इस लीला का एक बड़ा भाग राधाकृष्ण और गोपियों से सम्बन्धित है। भागवतकार ने कृष्ण और गोपियों के रूप को स्पष्ट कर दिया है, उनके पीछे के प्रतीक को उसने सदैव ध्यान में रखा है। परन्तु प्रतीक साधारण जनता के उत्साह के आगे अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। यह कहना कठिन होगा कि कृष्ण-गोपियों की लीला को मध्ययुग की कृष्णभक्त जनता ने कहाँ तक प्रतीक के रूप में ग्रहण किया। शायद बहुत कम। परन्तु लीला-भक्ति की एक विशेष साधना-पद्धति का जन्म हो गया।

जब तक गोपियों का विशेष व्यक्तित्व नहीं था (जैसा भागवत में है) तब तक प्रतीकार्थ का निभाना सरल था परन्तु जब अन्य अवतारों की शक्ति के अनुकरण में राधा की स्थापना शक्ति के रूप में हो गई और उन्होंने विशेष गोपी का

स्थान ग्रहण कर लिया तो प्रतीक एकदम लुप्त होना निश्चय हो गया। संस्कृत रीति-शास्त्र और युग की प्रवृत्ति ने राधा-कृष्ण के प्रेम-सम्बन्ध को अधिक विकसित किया और उसे लौकिकता की सत्ता पर उतारा।

जयदेव ने राधाकृष्ण के क्रीड़ा-विलास को पहली बार उपस्थित किया परन्तु वे प्रस्तावना में ही अपने दृष्टिकोण को इस प्रकार स्पष्ट कर देते हैं—

यदि हरि स्मरणे सरसं मनो
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कांत पदावलीं
शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

जयदेव का गीत गोविन्द भक्तों और आचार्यों में धर्म-ग्रंथ की तरह ही मान्य था, रीति-ग्रंथ की भाँति नहीं, अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग में जयदेव का दृष्टिकोण समझने में ग़लती नहीं की। पूजा के समय गीत गोविन्द के पद गाए जाते हैं। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि क्या भक्तों को उनमें अश्लीलता के दर्शन होते थे। इसके लिए हमारा उत्तर है—(१ मध्ययुग के भक्तों को विश्वास था कि यह अलौकिक पुरुष ही नहीं स्वयम् भगवान की लीला है। इसमें कुछ वर्जित नहीं। यह तो क्रीड़ा-मात्र है। अपने मनोरंजन के लिए भक्तों के विलास के लिए। इसे चुपचाप स्वीकार करने का आनन्द लेना ही धर्म है। (२) उस समय यह भावना चल पड़ी थी कि आराध्य को अत्यन्त निकट से देखा जावे। सूरदास ने इसी से बाल-कृष्ण की सृष्टि की। भगवान
का हो रहे। अतः भगवान की लीला में स्त्री-पुरुष
प्रसंग को महत्व देकर उन्हें साधारण स्तर पर लाने
भी होती थी। "ऐसा प्रेम चाहिये जैसा गोपियों का

या राधा का कृष्ण से है—" यह भावना प्रधान थी। प्रेम-लीला का गान करना भक्त और कवि का धर्म था।

पश्चिमी अनुसंधानकारों की गवाही देने से हमारे तर्क में बल नहीं आता, परन्तु हम ग्रियर्सन की यह उक्तियाँ उद्धृत करने का मोह नहीं छोड़ सकते—

"But his (Vidyapati's) chief glory consists in his matchless sonnets (Padas) in the maithili dialect dealing allegorically with the relation of soul to God under the form of love which Radha bore to Krishna."

(Modern Vernacular Literature of Handusthan P 9-10)

"To understand the allegory it may by taken as a general rule that Radha represents the soul, the messanger or Duti, Evangelist or else the mediator, and Krishna of course the deity."

(J. A. S. Bengal Extra no. to Pt. I, 1882 P. 29)

"The glowing stanza of Vidyapati are read by the devout Hindu with as little of the baser part of human sensuousness as the songs of solomon by the Christian priests."

(Ibid, P 36)

"Even when the sum of Hindu religion is set, when belief and faith in Krishna, and in that medicine of 'disease of existence', the hymns of Krishna's loves, is extinct, still the

love born for songs of Vidyapati in which he tells of Krishna and Radha, will never he diminished."

(Vidyapati and his contemporaries
P 31)

कवि की लीला-भक्ति का दृष्टिकोण इस पद से प्रत्यक्ष हो जाता है—

माधव जाए केवाड़ छोड़ाओल, जादि मन्दिर बसु राधा।
चीर उघारि अधर मुख हेरल, पान उगल छुथि आधा॥
"चीर कर दूर पान हम खाओलि अउर शांदल धकमाने।"
नगर रैनि हम बैसि गमाओलि खंडित भेल मोर माने॥
"नेपुरा नगर भटकि हम रहलहुँ," "किये न पठाओल दूती"
"मानिक एक मानिक दस पथरल आतदि रहल पहु सूती
कमल नयन कमलापति चुम्बित, कुम्भकरण सम दापे।
हरिक चरण गावेथि विद्यापति राधाकृष्ण विलापे॥

शिव-भक्ति

मिथिला में शिव-भक्ति का विशेष रूप से प्रचार था। शिव के अनेक मन्दिर थे जिनमें नवचारी के द्वारा भगवान भूतनाथ की आराधना की जाती थी। विद्यापति के पूर्वज शिव भक्त थे। वह स्वयं भी संस्कारवश शिव की पूजा करते होंगे। अतः उनका भक्ति-भाव व्यक्त रूप से शंकर की ओर ही मुड़ता है।

विद्यापति की शिव-विषयक भावना कई रूपों में प्रकट हुई है—

(१) शिव के नृत्यों और शिव गौरी के कथोपकथन में

(२) विनयावली में

इनमें से दूसरे अधिक महत्वपूर्ण हैं—

हर जनि बिसरब मोर ममिता।
हम नर अधम परम पतिता॥
तुं सम अधम उधारन दोसर, हम सन जगत नहीं पतिता।
जमकाँ द्वारा जवाब कओन देव, जखन बुझत निज गुन कर बतिया।
जब जम किंकर कोपि उठाएत तखन के होत धर हेरिया॥
भन विद्यापति सुकवि पुनित मति संकर विपरीत वनी॥
असरनसरन चरन सिरनावत दया करु दिअ सुलवानी।

(तखन-उस समय कौन रक्षा करने वाला होगा)

जान पड़ता है कि यह पद विद्यापति के वृद्धावस्था के हैं जब उन्हें पश्चाताप हो रहा था। इस पश्चाताप से यह अर्थ नहीं निकाल लेना चाहिए कि कवि अपने राधा-कृष्ण-काव्य के विषय में लज्जित है या उसका जीवन विशेष पतित है। इसका कारण उच्च संस्कार-जन्य धर्म-भावना है। अंतिम अवस्था में पहुँच कर विद्यापति नये देवता राधा-कृष्ण को पीछे डाल कर कुल-देवता शंकर की ओर मुड़े तो कोई आश्चर्य नहीं। उनके इन पदों में न काव्य का सौन्दर्य है न विनय है, केवल सीधा-सादा पश्चाताप है परन्तु इससे कवि की मनोवृत्ति का पता लगता है और उसकी भक्ति-भावना की गहराई व्यंजित होती है—

शिव हो उतरब पार कओन विधि।
लोढ़ब कुसुम तोड़ब बेल-पात॥
पूजब सदाशिव गौरिक सात।
बसहा चढ़ल शिव फिरए मसान॥
भगिया जठर दरदो नहिं जान।

यह बात महत्वपूर्ण है कि जहाँ विद्यापति ने राधा-कृष्ण को अत्यन्त निकट से नागर-नागरि के रूप में देखा है, वहाँ उन्होंने महेश को भी अधिक निकट से देखने का प्रयत्न किया है।

यह उनकी मौलिकता और उनके धार्मिक दृष्टिकोण का स्पष्ट उदाहरण है—

१ टूटले फटले मरइया अधिक सुहावन रे
तहि वर बैठलि गौरी मनहिं झाँखति है
माँगि माँगि लयलाह महादेव ता या दुइ धान है
बघछाल देलन्हि सुखाय बसल फूजि खायल है
उदहन देलन्हि चढ़ाय पैंच जोहय गेलीह है
एहन नगर के लोग पैंच नहिं दिये है
उदहन देलन्हि उतारि मनहिं मन झाँखिय है
घूमि फिरि अइता महादेव किए गए बुझाएब है
मनहिं विद्यापति गाओल गावि सुनाओल है
पैह भँगिया थीका दानी जगत भरमाओल है

२ आजु नाथ यक वर्त्त मोहि सुख लागत है
तोहे शिव धरि नट वेष कि डमरू बजाएब है
भलन कहल गउरा रउरा आजु सुनायब है
सदा सोच मोहि होत कहा समुझाएब है
रउरा जगत के नाथ कवन सोच लागय है
नाग ससरि भूमि खसत बघम्बर जागत है
होत बघम्बर बाघ बसह धरि खायत है
टूटि खसत रुद्राछ मसान जगावत है
गौरी कहँ दुख होत विद्यापति गावत है
गनपत पोसल मजूर से हो धरि खायत है
अमिय चुइँ भुमि खसत बघम्बर जागत है

परन्तु सच तो यह है कि हर और कृष्ण के भक्त होने पर भी विद्यापति का हृदय सबके लिए उन्मुक्त था। उन्होंने आदि शक्ति (देवी) की स्तुति की है, हरिहर के अभिन्न रूप की कल्पना की है और गंगा की प्रार्थना में भी वे उसी तन्मयता से लगे हैं

जिस तन्मयता से शिव के। वे अनेक देवियों को एक ही मातृ-शक्ति का रूप मानते हैं :

१ विदिता देवी विदिता हो अविरल केस सोहन्ती
एकानेक सहस धारिणि अरि रंग पुरनन्ती
कजल रूप तुअ कालिय कहिअउ उजल रूप तुअ बानी
रवि मण्डल परचंडी कहिए गंगा कहिए पानी
ब्रह्माघर ब्रह्मानी कहिए हर घर कहिए गौरी
नारायण घर कमला कहिए के आन उतपति तोरी

२ भल हरि भल हर भल तुअ काला
खन पित बसन खनहिं बघ छाला
खन पंचानन खन भुज चारि
खन शंकर खन देवि मुरारि
खन गोकुल भय चरवथि गाय
खन भिखि माँगिय डमरु बजाय
खन गोविन्द भयली महादान
खनहिं भरम धरु कान्ध वोकान
एक शरीरे लेल दुई बास
खन वैकुण्ठ खनहिं कैलास
भनहिं विद्यापति विपरीति बानी
ओ नारायन ओ सुलपानी।

३ कत सुखसार पाओल तुअ तीरे
छाड़इत निकट नयन बह नीरे
कर जोड़ि बिनमओं विमल तरंगे
पुन दरसन हो पुनमति गंगे
एक अपराध छेमब मोर जानी
परसल माथ पाअ तुअ पानी

(गंगा) कि करब जप तप-तप योग धेयाने
जनम कृतारथ एकहि सनाने
भनहि विद्यापति समद ओ तोही
अन्तकाल जनु बिसरह मोही

४ (क) जय जय भैरवि असुर भयावनि पशुपति भविनि माया।
सहज सुमति वर दियउ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया॥
वासर रैनि शवासन शोभित चरन चन्द्रमति चूड़ा।
कतउक दैत्य मारि मुँह मेलल कतउ उगिल कैल कूड़ी॥
सामर बरन नयन अनुरंजित जलद योग फुल कोकम।
कट कट विकट ओठ पुट पाँडरि लिधुर फेन उठ फोकान॥
घन घन घनय घुघुर कत बाजय हन हन कर तुअ काल कटारा।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक पुत्र बिसरु जनु माता॥

(ख) कनक भूधर शिखर वासिनि, चन्द्रिका चय चारु हासिनि,
दसन कोटि विकास, बाँकिम तुलित चन्द्रकले
क्रुद्ध सुर रिपु बल निपातिनी, महिष शम्भु निशम्भु घातिनि.
पीत भक्त भयापनोदन पाटल प्रबले।

जय देवि दुर्गे..................

विद्यापति के संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से यह निश्चित हो जाता है कि वह शैव थे। उनकी लोकप्रिय नचारियों और उनकी समाधि के ऊपर बने शिव-मन्दिर से भी इसी बात की पुष्टि होती है। 'शैव सर्वस्वसार' का विषय ही शिव-पूजा है। 'दुर्गा भक्ति तरंगिणी' और कुछ पदों में दुर्गा की प्रार्थना है परन्तु दुर्गा शिव की अर्धांगिनी होने से पूज्या हैं ही। और गंगा तो शिव जटावलम्बिनी हैं। इससे उनकी भक्ति भी शिव-भक्ति की भूमिका हो सकती है या उसका अंग। विद्यापति ने एक स्थान पर 'हरगौरी' को अपना इष्टदेव बनाया है—

"लोढ़ब कुसुम तोड़ब बेलपात
पूजब सदाशिव गौरिक साथ"

हरिहर की एकता पुराण-सिद्ध है। तब इसी एकता की भावना लेकर विद्यापति ने 'हरिहरि शिव-शिव तावे जाइब जिव, जावे न उपजु सिनेह' कहा है। उन्होंने विष्णु-पूजा पर कुछ भी नहीं लिखा। इससे स्पष्ट है कि वे वैष्णव नहीं थे, शैव थे। स्पष्ट ही न विद्यापति एकेश्वरवादी थे (जैसा डा० जनार्दन मिश्र का मत है), न वे पंचदेवोपासक ही थे, न शाक्त (जैसा प० भागवत शुक्ल मानते हैं: माधुरी जनवरी १६३६), न त्रिदेवोपासक (जैसा रामवृक्ष शर्मा का मत जान पड़ता है)। वास्तव में, विद्यापति प्राचीन मान्यता के अनुसार ही ग्रंथारम्भ में गणेश-वंदना रखते हैं। यह भी सम्भव है कि जिस तरह किसी भी पूजा के आरम्भ में मिथिला में आज भी सामान्यरूप से पंचदेवता की पूजा की जाती है, वैसी ही विद्यापति के समय में होती हो। परन्तु इसके आधार पर विद्यापति को पंचदेवोपासक नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह कहा जा सकता है कि कदाचित तांत्रिक उपासना की प्रबलता के कारण विद्यापति कभी शक्ति के उपासक रहे हों और बाद में हरगौरी की युगल मूर्ति को अपना इष्ट देव बनाकर उन्होंने राधाकृष्ण जैसा युग्म उपस्थित किया हो।

———

१३

विद्यापति-पदावली पर विहंगम दृष्टि

१—विद्यापति की पदावली में हमें तीन प्रकार की भाव-धाराएँ मिलती हैं—

(क) राधा-कृष्ण-लीला को शृङ्गार-शास्त्र की पद्धति पर प्रतिष्ठित करने की भावना। इसमें काव्य की दृष्टि ही अधिक है, धर्म-भावना नितान्त न्यून मात्रा में मिलेगी।

(ख) भक्ति की भावना। शिव, शक्ति और गंगा के प्रति कहे हुए पदों एवं कुछ अन्य शान्त रसपूर्ण पदों में इस भावना के दर्शन होंगे।

(ग) रहस्यवाद की भावना। आत्मा-परमात्मा के रूपक वाले पदों में एवं उन पदों में जिनमें सौन्दर्य, प्रेम और विरह लोकान्तर और अपार्थिव हो गये हैं, रहस्य की भावना स्पष्ट है।

इनमें (क) सबसे महत्त्वपूर्ण है।

२—पदावली के राधा-कृष्ण-सम्बन्धी पदों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके तीन आधार हैं :

(च) कवि मनोविज्ञान और स्वभावोक्ति का सहारा लेता है और आत्मानुभूति के द्वारा पाठक को स्पर्श करता है। भक्ति पदों और प्रेममिलन, विरह, सद्यः स्नाता एवं वयः-सन्धि के पदों में हमें यह बात मिलती है। ये पद इसीलिए धर्म-प्राणों को प्रिय हैं।

(छ) कवि केवल काव्य-कौशल एवं कल्पना का सहारा लेकर ऊपर उठता है। राधा-कृष्ण के रूप-वर्णन के पद इसके अन्तर्गत आते हैं।

(ज) कवि पांडित्य-प्रदर्शन की चेष्टा करता है। उक्ति-सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करने एवं वाग्वैदग्ध्य की ओर उसकी दृष्टि है। इस पांडित्य प्रदर्शन के कई रूप हैं १ दूती-प्रसंग, मान, अभिसार, शिक्षा २ कूट ३ लोकोक्तियों का प्रयोग ४ सम्भोग-चित्रण ५ रहस्यवादी पद।

वयः-संधि और सद्यःस्नाता-सम्बन्धी पदों को भी इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है क्योंकि उनमें कवि अनुभूति का उतना सहारा नहीं लेता जितना वाग्वैदग्ध्य का।

३—चंडीदास और सूरदास की तरह विद्यापति सहज कवि नहीं है। उनकी कल्पना भी पांडित्य-प्रसूत है और उनके काव्य में कल्पना की प्रधानता है। उन्होंने काव्य-रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति, संस्कृत शब्द कोप—सबका प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जहाँ पांडित्य और हृदयानुभूति का मेल हुआ है वहाँ विद्यापति के पद अद्वितीय हो गये हैं।

४—विद्यापति ने कृष्ण-कथा को मौलिक रूप दिया है। यह सच है कि वैवर्त्त पुराण और जयदेवकृत गीति गोविन्दम् से विद्यापति परिचित थे, परन्तु उन्होंने कथा में स्वतंत्रता बरती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण राधा को सोता छोड़ कर मथुरा चले जाते हैं। विद्यापति मे भी यही प्रसंग इंगित किया गया है। परन्तु जयदेव की तरह विद्यापति ने भी केवल राधा-कृष्ण के प्रेम-विलास का ही चित्रण किया। जयदेव के गीत गोविन्द की कथा-वस्तु श्रीमद्भागवत स्कंध २६-३३ में मिलेगी, परन्तु जयदेव ने उसे खंड काव्य का रूप दे दिया है। श्रीमद्भागवत

और गीत गोविन्द की तुलना करने पर दोनों का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है—

(क) भागवत में कथा की वीथिका शरत् ऋतु है, गीत गोविन्द में वसन्त।

(ख) भागवत में सारा कथानक एक ही रात का है, योग माया ने रात का विस्तार कर दिया है। गीत गोविन्द में कथा दो दिन-रात में समाप्त हो जाती है।

(ग) भागवत में पूर्णिमा रजनी है यद्यपि वन पल्लवाच्छादित होने के कारण घोर-रूपा। गीत गोविन्द में वर्षाभिसार का वर्णन है।

(घ) भागवत के कृष्ण शिशु या किशोर हैं, योगमाया से तरुण हो गये हैं। गीत गोविन्द में उन्हें तरुण एवं वय-प्राप्त चित्रित किया गया है।

इनसे स्पष्ट है कि जयदेव ने राधा-कृष्ण के कथानक में पर्याप्त मौलिकता का समावेश किया है। ऐसा क्यों किया? स्पष्टतः जयदेव संस्कृत काव्य-परम्परा से परिचालित हैं, विशेषतः रसराज के सम्बन्ध में स्थापित शास्त्रीय सिद्धान्तों से। उन्होंने योगमाया प्रसंग को पीछे छोड़ कर कृष्ण को मानवीय स्तर पर स्थापित कर दिया है। विद्यापति जयदेव के चरण-चिन्हों पर ही चले हैं यद्यपि उन्होंने नये प्रसंग भी जोड़ दिये हैं। जयदेव ने वेणुवादन प्रसंग नहीं लिया। उसे विद्यापति ने भी नहीं लिया। हाँ, उन्होंने राधा की वयः-सन्धि का प्रसंग जोड़ दिया। इससे उन्हें यौवन-विकास, प्रथम दर्शन आदि प्रसंग मिल गये हैं और वे राधा कृष्ण में शृङ्गार भाव का क्रमिक विकास दिखला सके।

बात यह है कि जयदेव ने रीति-शास्त्र का सहारा मात्र लिया था, अपनी कथा भागवत पर ही आश्रित की थी।

विद्यापति ने रीति शास्त्र को ही कथा का रूप दे दिया। उनकी कथा का विभाजन देखने से यह बात साफ़ समझ में आ जाती है; वयः-सन्धि, नखशिख-वर्णन, स्नान, पूर्वराग, दूती-सम्भाषण, अभिसार, मिलन, मान, दूती द्वारा उद्बोधन एवं नायका का मान-मोचन, मिलन। इनके आगे मथुरा-गमन, राधा का विरह और स्वप्न में मिलन के तीन प्रसंग जोड़ देने से विद्यापति-पदावली की कृष्ण-कथा पूरी हो जाती है। स्पष्ट है कि परम्परा-गत कृष्ण-कथा में से मथुरागमन की कथा ही ली गई है, शेष कवि की उद्भावनाएँ हैं। जिस रूप में हमारे कवि ने राधा-कृष्ण के प्रेम-विकास की कल्पना की है, उसमें नायिका के सभी भेदों का समावेश नहीं हो सकता था, परन्तु कितने ही भेदों का उल्लेख अवश्य हो गया है। भागवत और जयदेव के विशिष्ट विषय रास का विद्यापति में एकदम लोप है यद्यपि स्वतंत्र रूप से रास-वर्णन के पद मिल जायेंगे। शृङ्गार शास्त्र का आश्रय लेते हुए भी जयदेव भागवत से बहुत दूर नहीं गये, विद्यापति दूर तक मौलिक हैं। जयदेव में न पूर्वराग है, न दूती-प्रसंग का इतना विस्तार है। विपरीत रति, रति, सुरतारम्भ, सुरतांत के चित्रण विद्यापति और जयदेव में समान रूप से मिलते हैं चाहे विद्यापति ने उन्हें जयदेव से लिया हो या ब्रह्मवैवर्त पुराण से जहाँ से स्वयं जयदेव को प्रेरणा मिली होगी।

५—जयदेव के काव्य से विद्यापति का काव्य एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात में भी मिलता है; जयदेव ने अपने काव्य में "दूती" का महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। केवल अभिसार और मान के प्रसंगों में उन्हें दूती की आवश्यकता पड़ी है। विद्यापति ने मान-शिक्षा, अभिसार, मान, विरह, प्रबोध और मिलन—प्रत्येक प्रसंग में दूती को सम्मिलित किया है। दूती की

इस प्रधानता को देखकर ही रहस्यवाद-पक्ष के समर्थक उसे "mediator" या सत्गुरु का स्थान देते हैं। विद्यापति-पदावली में केवल तीन चरित्र ही हमारे सामने आते हैं—राधा, कृष्ण, दूती। वयः-संधि से लेकर मथुरा से लौटने पर मिलन के अवसर तक दूती राधा-कृष्ण के बीच में बराबर बनी रहती है। इसी दूती-विस्तार के कारण जहाँ एक ओर ग्रियर्सन आदि विद्यापति को रहस्यवादी कहते हैं वहाँ डा० रामकुमार वर्मा आदि उन्हें केवल शृंगारिक कवि मानते हैं।

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि विद्यापति के काव्य में दूती को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। जयदेव में हमें यह बात नहीं मिलती। सूर आदि कृष्ण-भक्त कवियों में भी दूती को प्रसंग-वश ही स्थान दिया गया है।

परन्तु जयदेव और विद्यापति के दृष्टिकोणों में बहुत कुछ साम्य भी है। जयदेव ने अपने काव्य को "हरि स्मरण" के लिए लिखा है। विद्यापति ने इस प्रकार की बात कहीं नहीं कही परन्तु अस्पष्ट रूप से कितने ही पदों में यह दृष्टिकोण सामने आता है जैसे

देख देख राधा रूप अपार

× × ×

करु अभिलाष मनहिं पद पंकज अहोनिश कोरि अगोरि

श्रीनगेन्द्रनाथ ने इस पद का शीर्षक "राधा वन्दन" लिखा है। अन्तिम पंक्ति में विद्यापति का भाव लगभग यही है। जयदेव के पदों से विद्यापति के पदों में अन्तर यही है कि जहाँ जयदेव केवल "विलासकला" से "हरि स्मरण" करना चाहते हैं वहाँ विद्यापति "विलासकला" और सौन्दर्यानुभूति दोनों से। वास्तव में पिछली भावना अधिक है।

६—विद्यापति के गीत लोक-गीतों की तरह सुन्दर, स्निग्ध और भावुकता से पूर्ण हैं। वे हृदय के अन्यतम भागों को स्पर्श करते हैं और मन हठात् मुग्ध हो जाता है। गीति-काव्य की विशेषताएं हैं (क) संगीत की प्रधानता (ख) भावों की एकता (प्रत्येक गीत में एक ही भाव विकसित हो) (ग) अनुभूति की गहराई (घ) सुव्यवस्थित रूप (ङ) अत्यन्त परिचित मूर्त्तिमत्ता। विद्यापति के गीतों में इन सबका हम प्रचुर मात्रा में पाते हैं। विद्यापति से पहले जयदेव गीति-काव्य की रचना कर चुके थे परन्तु उनके काव्य की उत्कृष्टता का आधार ध्वनि-सौन्दर्य और छंद-सौन्दर्य था, भावों और अनुभूतियों में न अधिक वैभिन्न्य था, न अधिक गहराई। उसमें नागरिकता की मात्रा—कला की मात्रा—ही अधिक थी। जयदेव की "कोमल कांत पदावली" का प्रभाव विद्यापति पर भी पड़ा और कदाचित् वह इसी प्रभाव के स्पष्ट रूप से लक्षित रहने के कारण "अभिनव जयदेव" कहे गये, परन्तु उनमें कई अधिक बातें भी हैं।

विद्यापति के पद जयदेव के पदों की भाँति ही कोमल हैं। जयदेव यदि कहते हैं—

> ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे
> मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे
> विहरति हरिरह सरस वसन्ते
> नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते

तो विद्यापति भी भी उनके अनुकरण में संगीत के उतने ही ऊँचे धरातल पर उठ सकते हैं—

> नव वृन्दावन नविन तरुगन नव नव विकसित फूल
> नविन वसन्त, नविन मलयानिल, मातल नव अलि कूल

विहरहिं नवल किशोर
कालिन्दी तट, कुंज नव शोभन नव नव प्रेम विभोर ॥
नविन रसाल, मुकुल मधु मातल, नव कोकिल कुल गाय।
नव युवती गन, चित उनमातइ, नव रस कानन धाय ॥

जयदेव के छन्दों में न इतनी अधिक विभिन्नता है, न भक्ति की इतनी सुन्दर योजनाएँ की गई है जितनी विद्यापति के गीतों में। यही कारण है कि उनमें एक विचित्र सौन्दर्य आ गया है। छन्द की सुन्दर सुगठित योजना में विद्यापति सूरदास से होड़ करते हैं—

(१) के पतिया लय जायत रे, मोर प्रियतम पास।
हिय नहिं सहय असह दुखरे मेल सावन मास ॥
(२) नाव डोलाय अहीरे, जिवत न पायब तीरे, खर नीरे लो।
खेवन लेअय मोल, हसि हसि कि दुहु बोल, जिव डोले लो ॥
(३) अइलि निकट वाटे, छुअटि मदन साटे,
दृढ़ बान्ध दरसिल केस रमन भवन वेरि
पलटि पाछुय हेरि, आलि दीठि दे गेलि संदेस

अनुभूति की गहराई प्रकट करने में तो विद्यापति के गीत अद्वितीय हैं। जयदेव में कला अधिक है, हृदय कम है। विद्यापति में दोनों का ऐसा सुन्दर मेल है कि मन मुग्ध हो जाता है। उनकी कला जयदेव की कला का सहारा लेते हैं और संस्कृत काव्य-शास्त्र से अपने को पुष्ट करती है, परन्तु वह लोक-गीतों का भी सहारा लेती है। कदाचित कोई भी अन्य कवि लोक-जीवन और शास्त्र की गंगा-यमुना को इतने समीप नहीं ला सका। यह विद्यापति की ही विशेषता रहेगी। पाठक ग्राम-गीतों से परिचित होंगे जिनमें विरहिणी दूर प्रवास में गये प्रियतम को पत्र पहुंचाने को कहती है या कौओं का उड़ाती है अथवा उससे स्नेह की बात कहती है। विद्यापति की

रचना में से ऐसे अनेक जन-अनुभूतिपूर्ण गीत छाँटे जा सकते है—

के पतिया लय जायत रे मोर पियतम पास
हिय नहिं सहय असह दुख रे भेल साओन मास
एकसरि भवन पिय बिनु रे मो रहलो न जाय
सखि अनकर दुख दारुण रे जग के पतिआय

या

मोरहि रे अँगना चाँदन केरि गछि ताहि चढ़ि कुररए काक रे
सोने चञ्चु बँधए देव मोए वाअस जदि पिआ आओत आज रे

भावोल्लास के ऐसे सुन्दर रहस्यात्मक चित्रण कदाचित् ही किसी पद-साहित्य में मिलें—

सरस वसन्त समय भल पाओलि पछिन पवन बहु धीरे
सपनहुँ रूप वचन एक भाखिअ मुख सौ दूरि करू चीरे
तोहर वदन सम चान होयथि नहि कइयो जतन बिहि देला
कइ बेरि कटि बनाओल नव कइ तइओ तुलित नहि भेला
लोचन तूअ कमल नहि भइसक से जग के नहि जाने
से फेरि जाय लुकायए जल भय पङ्कज निज अपमाने

या

हमर मन्दिरे जब आओब कान
दिठि भरि हेरब से चान्द वयान
नहि नहि बोलब जब हम नारि
अधिक पिरीति तब करब मुरारि
करे धरि मझु बैसाओब कोर
चिर दिने साध पुराओब मोर
कत आलिंगन दूर कए मान
मोर ने पूरब हय मुदब नयान

या

दुसह वियोग दिवस गेल बीति । प्रियतम दरसन अनुपम प्रीति ।।
आप लगइछथि विधु अनुकूल । नयनकपूर आँजन समतूल ।।
गावथु पञ्चम कोकिल आवि । गुञ्जथु मधुकर लतिका गावि ।।
वहथु निरन्तर त्रिविध समीर । भन विद्यापति कविवर धीर ।।

शब्द-लालित्य का तो कहना ही क्या ? विद्यापति अभिनव जयदेव ही तो ठहरे । रूप-सौन्दर्य, रचना-सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य—सभी दृष्टि से विद्यापति के पद हिन्दी-गीति-साहित्य का कंठहार हैं ।

७—विद्यापति के काव्य में नागरिकता की मात्रा ही अधिक है, यह हम पहले कह चुके हैं । उसमें प्रकृति अपने परम्परागत रूप में अवतरित हुई है—

कुसुमित कानन हेरि कमलमुखि मूँद रहे दुहुँ नैन
कोकिल कलरव मधुकर धुनि सुनि कर देइ झापल कान

या

फुटत कुसुम नव कुंज कुटिर नव कोकिल पंचम गावै रे
मलयानिल हिम शिखर सिधायल पिया निज देश न आवै रे
चाँद चन्द तनु अधिक उतापइ, उपवन अलि उतरोल
समय बसन्त कन्तु रहु दुर देश, जानतु विहि प्रतिकूल

(विरह)

अरुन पुरब दिसि बहल सगर निसि गगन मगन भेल चन्दा
मुदि गेला कुमुदिनि, तइओ तोहर धनि मूदल मुख अरविन्दा

अथवा

कोकिल कुल केर कलरव सुन्दर काहल बाहर बाजे
मन्जिर ऊपर मधुकर गुंजर से जनि कंजर गाजे

मन मलीन परान दिगन्तर लगनु कमल लाज
विरहिन जन ही मारन कारन वेकत भो ऋतुराज
(मान)

बारिस जामिनि कोमल कामिनि दारुन अति अंधकार
पंथ निशाचर सहस संचर घन परे जल धार

× × ×

अति भयावनि नाद जलामय कैसे आउति पार
(अभिसार)

हे हरि हे हरि सुनिए श्रवन भरि अब न विलासक वेरा
गगन नखत छल से अवेकत भेल कोकिल करइछ फेरा
चकवा मोर सोर कए चुप भेल उठिए मलिन भेल चन्दा
नगर क धेनु डगर कए संचर कुमुदिनि बस मकरन्दा
(मिलन)

जहाँ रास-जैसे प्रसंगों के अन्तर्गत विद्यापति ने प्रकृति का वर्णन किया है वहाँ भी उन्होंने रूढ़ि का पालन करते हुए उसे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के भीतर से ही देखा है। रूपक के रूप में वसन्त के दो चित्र नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि विद्यापति के प्रकृति-चित्र कल्पना और काव्य रूढ़ि पर आश्रित हैं, स्वयं कवि की अनुभूति पर नहीं—

माघ माँस पंचमि गँजाइलि
नवए माँस पंचमि हरुआइ
अति घन पीड़ा दुख बड़ पाओल
वनसपति भेलि धाइ हे
सुभ खन बेरा सुकलपख हे
दिनकर उदित समाइ

सोलह सँपुने बतिस लखने
जनम लेल रितुराइ हे
नाचए जुवति गन हरखित,
जनमल बाल मधाइ हे
मधुर महा रस मंगल गावए
मानिनि पान उदाइ हे
वह मलयानिल ओत उचित है,
नव घन भउ उजिआरा
माधवि फुल भल गजमुकता तल,
तेँ देल बन्द वे नारा।
हीअरि पाँडरि महुअरि गाँवए;
काहर कार धुथूरा।
नागेसर कलि संख धुनि पूर
ते कर ताल समतूला।
मधु लए मधु करें बालक दच्हलु
कमल पखुरिया झुलाइ
पौनजाल तोरि करि सुत बाँधल
केसु कइलि बघनाइ
नव नव पल्लव सेज ओछाओल,
सिर दहु कदपेरि माला
बैसलि भमरी हर उद गावए
चक्का चन्द निहारा॥
कनए केसुआ सुति पत्र लिखिए हलु
रासि नछत्र कए लोला।
कोकिल गणित गुणित भल जानए
रितु बसंत नाम थोला॥

बाल बसत तरुन भए धाओल
बेढ़ए सकल ससारा।
दखिन पवन घन आँग उगारए
किस लय कुसुम परोग
सुललित हार मजर घन कज्जल
आखितओ अञ्जन लागे

(माघ मास श्री पचमी प्रकृति गर्भ से पीड़ित होने लगी और नौ महीना पाँच दिन बीते उसे अत्यन्त पीड़ा हुई। वनस्पति धाई बनी। शुक्लपक्ष में शुभ मुहुर्त पर, जब सूर्योदय हो रहा था, ऋतुराज वसन्त ने सोलह अंगों से पूर्ण, बत्तीसों लक्षणों से युक्त बालक रूप में जन्म लिया। हर्षित होकर युवतियाँ नाचने लगीं और रसपूर्ण मधुर मंगल गीत गाने लगीं। माननियों के मान भंग हो गये। मलयानिल बहने लगा। आकाश में नए बादल छाए। माधवी फूल गज-मुक्ता जैसा हो गया। उसे गूंथ कर वन्दनवार बनाई गई। पीले पाटल के फूल पर मधुकरी गीत गाती हुई गूंजने लगी, धुथूरा तूर्यनाद करने लगी। नागेश्वर पुष्प ने शंखध्वनि द्वारा ताल दी। मधुकर ने शिशु वसन्त को कमल पत्र पर लिटाकर सुलाया, उसे मधु चटाया। पटलनाल को तोड़ कर उसके सूत की करधनी बालक को पहनाई गई, केसर का फूल बघन्यवा बनाकर पहनाया गया। नव पल्लव बिछौना बने, सिरहाने कदम्ब की माला रखी गई, भ्रमरी बैठ कर गाने लगी और शिशु चन्द्रमा को देखने लगा। राशि-नक्षत्र निकालकर कनक केशरपत्र पर जन्म-पत्र लिखा गया। कोकिल ने गणना कर बालक का नाम 'वसन्त' रखा। समय पाकर वही बालक वसन्त तरुण हुआ और जहाँ-तहाँ (सारे संसार में) दौड़ने-फिरने लगा। दक्षिण पवन ने पराग का अंगराग उसके शरीर पर मला, मंजरी

को सुन्दर माला उसके गले में पहनाई और आँख में मेघ का अञ्जन लगाया।

आएल ऋतुपति राज बसंत।
धाओल अलि कुल माधवि पंथ॥
दिनकर किरन भेल पौगंड।
केसर कुसुम धएल हेमदंड॥
नृप आसन नव पीठल पात।
कांचन कुसुम छत्र धेरु माथ॥
मौलि रसाल मुकुल भेल ताम।
समुखहिं कोकिल पंचम गाय॥
सिखिकुल नाचत अलिकुल यन्त्र।
आन द्विजकुल पढ़ु आशिख मन्त्र॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग।
मलय पवन सह भेल अनुराग॥
कुन्दवल्ली तरु धएल निशान।
पाटल तूण अशोक दलवान॥
किंशुक लवगंलता एक संग।
हेरि शिशिर रितु आगे देल भंग॥
सैन्य साजल मधु मालिक कूल।
शिशर क सबहु कएल निरमूल॥
उधारन्त सरसिज पाओल।
निज नवदले करु आसन दान॥

(ऋतुराज बसन्त का आगमन हुआ। उनका स्वागत करने के लिए भौंरे दौड़े आये। सूर्य का तेज बढ़ा। नागकेशर के फूल में हेम-दंड निकल आया अर्थात् जिस प्रकार राजा के दंड को धारण करने के लिए एक परिचारक उसके साथ रहता है, उस प्रकार वह परिचर्य्या नागकेसर के सिर पड़ी। पीतल के

पत्र के ऊपर ऋतुराज को श्रमन दिया गया। कांचन फूल ने उनके ऊपर छत्रच्छाया की। मौलि, रसाल, मुकुल नतमस्तक सामने आये। कोकिल ने सामने आकर पंचम गान आरम्भ किया। मोर नाचने लगे। अलिगण यंत्र बजाने लगे। द्विजों अर्थात् पक्षियों ने आकर आशीर्वाद दिया। कुसुम पराग का चँदोवा तना। मलय पवन उसे मन्द-मन्द हिलोरों से झकझोरने लगा। कुन्दवल्ली ने निगाह अर्थात् निशान रखे, पाटल तूण बने, अशोक दल वाण। धनुषाकार पलाश पर लवंगलता की डोरी चढ़ी। इस तैयारी को देखकर शिशिर का उत्साह भंग हो गया। मधु मक्खियों की सेना सजी। उन्होंने शिशिर को निर्मूल कर दिया। पवन का उद्धार हुआ। उसने अपने दलों को आसन के रूप में भेंट किया।)

८—राधा कृष्ण के प्रेम-विलास और विरह के अतिरिक्त विद्यापति ने अन्य विषयों पर भी पद कहे हैं जिनका लोक-जीवन से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है।

पति बालक है, पत्नी तरुणी है। इस अवस्था में पत्नी की मनोवृत्ति का चित्रण कवि इस प्रकार करता है—

पिया मोर बालक हम तरुणी।
कौन तप चुकलौंह भेलौंह जननी॥
पहिर लेल सखि एक पछिनक चीर।
पिया के देखति मोर दगध शरीर॥
पिया लेलि गोदकँ चललि बजार।
हरियाक लोक पुछे के लागु तोहार॥
नहिं मोर ते ओर कि नहि छोट भाइ।
पुरब लिखल छल स्वामी हमार॥
बाट रे बटोहिया कि तोंही मोर माइ।
हमरो समाद नैहर लेने जाहु॥

फटिहुन बवा मिनय घेनु गाइ।
दुधवा पिलायकँ पोसत जमाइ॥
नहि मोरा टका अछि नहि घेनु गाइ।
केओनइ विधि पोसब बालक जमाइ॥

यही नहीं, उन्होंने राधा कृष्ण कथा को भी लोक-जीवन की भित्ति पर स्थापित किया है, उसी प्रकार जिस प्रकार सप्तशतियों के लेखकों ने अपने काव्य का आधार लोक-जीवन रखा था यद्यपि इस चित्रण पर काव्य-शास्त्र का प्रभाव भी लक्षित है। नायिका ननद से कहती है—तू मेरा रूप देखकर मुझे दोष देती है—

ननदी, सरूप निरूपह दोष

बिनु विचार व्यभिचार बुझै वह सासु करय बहु रोठस
कयतुक कमल नाल हम तोरलि करय चहलि अवहंस
रोल रोख सँमधुनेर धावल तहि अधार करु दंस
सरोवर घाट बाट कंटक तरु हेरि नहिं सकतहु आग
साँकर बाट उबटि हम चललहु त कुच कंटक लागु
गरुअ कुम्भ सिर थिर नहिं थौकय तें ओ घसल केस पास
सखि जन सँहम पाछु पडलहुँ तें भेला दिरघ निसास
पथ अपराध पिसुन परचारल तथिहु उत्तर हम देला
अयरस ताहि बिरल नहिं रहता तें गदगद सुर भेला
भनइ विद्यापति सुनु वर युवरि ई सम राखहु गोई
ननदी सँ रस रीति बचाओब गुपुत केवल नहिं होई

अथवा सास को सोता जानकर नायक आया है, नायिका सखी से उस परिस्थिति का वर्णन करती है—

साउ सुतलि मोर कोर अगोर
तहिं रति दीठ पीठ रहु चोर

कतहम आखर कहलु बुझाय
आजुक चातुर कहबे कि जाय
ना करु आरत ए अबुध नाह
अब नहिं होत बचने निरवाह
पीठ अलिंगन कत सुख पाव
पानिक पियास दूध किय जाव
कम निसबद करि कुच कर देला
समुख न जाय सघन निसवास
हँसि किरन भेला दसन विकास
जागल सास चलल तब कान
ना पुरल आस विद्यापति भान

इस पद में 'कान" विशेष अर्थ-सूचक शब्द नहीं रह गया। कवि एक परिस्थिति का चित्रण करता है। काव्य-प्रकाश और गाथा सप्तशती में हम इस प्रकार की परिस्थिति देख चुके हैं। ऐसे पद इन्हीं रचनाओं की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। लोक-जीवन के उन्हीं अंगों को ये पद छूते हैं, जिन अंगों को इन रचनाओं ने छुआ था। इन पदों के अतिरिक्त मिलन के वे सब पद भी प्रतिदिन के लोक-जीवन से मिलकर चलते हैं जिन पदों में नायिका का प्रथम-मिलन-भय, सखियों की चुहल, प्रथम मिलन, सम्भाषण आदि वर्णित है। इन पदों के आलम्बन राधा-कृष्ण हैं परन्तु किसी भी दम्पति को इनके स्थान पर रखा जा सकता था।

९ विद्यापति और चन्डीदास की तुलना

विद्यापति का शब्द-सौन्दर्य चन्डीदास से कहीं उत्कृष्ट है। एक बार सुनते ही मन मुग्ध हो जाता है। परन्तु उनके भावों में नवीनता चाहे जितनी हो वे अनुभूति की इतनी गहराई से नहीं निकलते जितने चन्डीदास के गीत। विद्यापति काव्यकला

के अधिक मर्मज्ञ हैं परन्तु चंडीदास के अत्यन्त सादे शब्द जादू करते हैं। उन पर उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और पांडित्य का आवरण नहीं पड़ा है। वे सहज उक्तियों से ही भीतर प्रवेश कर जाते हैं परन्तु कभी-कभी विद्यापति भी चंडीदास के धरातल पर उतर आये हैं। उनका पांडित्य उन्हें छोड़ देता है। तब कोई भी कवि उनकी तुलना नहीं कर सकता। "पूर्वराग" सम्भोग मिलन", "अभिसार" और "मान" के प्रसंगों में विद्यापति अपराजित दिखाई देते हैं। उनके इन पदों में आध्यात्मिकता नहीं, शारीरिक प्रेम और वासना है परन्तु उनके अन्तिम समय के पदों में आध्यत्मिकता की दृष्टि की ओट नहीं किया जा सकता। मध्ययुगेर वैष्णव साहित्य' में सेन महोदय ने की तुलना इस प्रकार की है—

"Of Chandidas and Vidyapati it may be said that the one sings as impelled by nature' his is a voice from the depth of the soul; literary embellishments are lost sight of; poetry wells up like a natural fountain, whose pure flow contains no course grain of earth. The other is a conscious poet, and a finished scholar, whose similies and metaphors are brilliant poetical feats at once captivate the ear, and the boldness of the colour in the pictures presented to the mind dazzles the eyes. The senses of sensuality and lust are redeemed by others which are platonic and spiritual—a strange combination of holy and unholy, of earthly and unearthly (heavenly). His earlier

poems are full of sensualism—his later Poems of mystic ideas. Chandidas is a bird from the higher regions, where earthly beauties may be scant, but which is nearer heaven, for all that. Vidyapati moves all day in the Sunny grooves and floral meadows of the earth, but in the evening rises high and overtakes his fellow-poet."

(P. 149)

१४

विद्यापति की भाषा

विद्यापति की भाषा में अनेक मतभेद हैं। इसका एक कारण तो यह है कि विद्यापति के पद हिन्दी, मैथिली और बँगला बहुत दिनों से इन तीनों की सम्पत्ति हो गए हैं और मौलिक रूप एवं लिपि-प्रमाद के कारण मूलरूपों का पुनरुत्थान कठिन होरहा है। दूसरी बात है, उस समय की भाषा के सम्बन्ध की अन्य प्रामाणिक सामग्री का अभाव है जिससे तुलना की जा सके।

विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में 'अवहट्ट' भाषा का प्रयोग किया है। इसे ही वह 'देसिल वयना' भी कहते हैं। डा० सुनीतिकुमार का मत है कि 'अवहट्ट' शौरसेनी अपभ्रंश है परन्तु 'महाकवि 'विद्यापति' के लेखक स्व० पं० शिव नन्दन ठाकुर उसे मागध अपभ्रंश (मिथिलापभ्रंश) सिद्ध करते हैं। विद्यापति की मैथिली इसी का परवर्ती रूप है। इस प्रकार के अनुमान से कम-से-कम एक समस्या हल हो जाती है—बँगला रूपों से साम्य, क्योंकि बंगला भाषा भी मागधी प्राकृत से निकली है। मागधी प्राकृत के कुछ रूप 'मागधी अपभ्रंश' में होकर विद्यापति की भाषा में आये हैं और ये रूप प्राचीन बँगला में भी उसी उद्गम से आये हैं।

दूसरी समस्या है, विद्यापति के काव्य में ब्रजभाषा के कुछ रूप मिलते हैं। वास्तव में बाद को इनके पदों के अनुकरण में

जो लिखा गया उसे "ब्रजबुलि" भाषा का साहित्य कहा गया है। 'ब्रजबुलि' का अर्थ है, ब्रज की बोली। परन्तु वास्तव में बंगला कवियों की 'ब्रजबुलि' विद्यापति की भाषा का अनुकरण है। अनुमान है कि ३०० ई० से ८०० ई० तक शौरसेनी प्राकृत हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा थी। यह देशभाषा और राष्ट्रभाषा भी थी। अतः मैथिल साहित्य में इस सर्वमान्य सार्वभौम भाषा का प्रभाव निश्चित है। 'अवहट्ट' में ही शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश का बड़ा प्रभाव दीखता है। यही आगे चलकर ब्रजभाषा के कुछ रूपों में समानता उत्पन्न करता है।

नीचे इस विद्यापति की भाषा का विस्तारपूर्ण अध्ययन एवं विश्लेषण उपस्थित करते हैं—

१ शब्दरूप

(१) शब्दों के अन्तिम व्यंजनों का लोप जिसमें वे स्वरांत बन गये।

(२) आ, इ, उ के अतिरिक्त स्वर भी इन्हीं के रूप में परिवर्तित है।

(३) बहुधा आ, इ, उ भी 'अ' के रूप में परिणित हो गये हैं जैसे बाहु का बाह (वलअ भाँगल बाँह मयोलि) रेखा का रेह (सुपहु सुनारि-सिनेह-चान्द-कुसुमसम)

(४) संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग भी विद्यापति के समय तक खूब हो जाता था, परन्तु उन पर प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट है, जैसे—

(क) अंतिम व्यजन का लोप—मनसू, कमन, इत्यादि मन, कर्म के लिये।

(ख) अतिम दीर्घ स्वर ह्रस्व (सुन्दरी—सुन्दरि)

(ग) अनेक इकारांत-उकारांत आदि शब्द अकारांत (लघु—लहुअ)

(५) विभक्तियों के रूप—विद्यापति की भाषा में ८ विभक्तियों का प्रयोग मिलता है। वे ये हैं—ए, या एं या एँ, हि, क, के, एरि, कें, काँ या का, सञो। अपभ्रंशयुग में कर्ता, कर्म, सम्बन्ध आदि विभक्तियों का लोप होकर निर्विभक्तिक पदों का व्यवहार होता था। वही परिस्थिति विद्यापति के पदों की भी है। 'एरि' विभक्ति का व्यवहार बहुत कम है (बंगला के 'एर' से तुलना कीजिये)

सम्बन्ध—हि, क, के, कें, काँ, सञो, एरि
कर्ता और करण—ए, ञे, एँ, चन्द्रबिन्दु
सब कारक—चन्द्रबिन्दु

इनके अतिरिक्त कुछ शब्दों का प्रयोग भी विभक्ति के रूप में होता है जैसे 'में' के लिए 'मइ' (मध्य—मज्झ)। इसी अधिकरण कारक में दीर्घ ईकारांत के लिए ह्रस्व रूप का प्रयोग होता है। कर्त्ता और कर्मकारक में भी इसी प्रकार ईकारांत को इकारांत कर देते हैं जैसे फूटिकरसि फुलवालि (फुलवाड़ी में)।

२ लिंग

अकारांत शब्दों की तरह सब शब्दों का रूप बनाकर तीन लिङ्गों (पुं० स्त्री० क्लीव) के स्थान पर एक ही लिङ्ग बनाने की चेष्टा की है। मैथिली की वर्तमानकाल की क्रियाओं में लिंगभेद नहीं है—परन्तु विद्यापति में है पु० भेल स्त्री० भेलि; पु० होएत, स्त्री० होइति। विशेषण स्त्रीलिंग में 'ई' या 'इ' का प्रयोग जैसे कहिनी तोरि, अभागलि नारि। साधारण संस्कृत स्त्रीलिंग से बने प्राकृत या अपभ्रंश के शब्द स्त्रीलिंग में व्यवहार में आते हैं जैसे लाज (लज्जा), मोती (मुक्ता)। परन्तु कहीं-

कहीं लिंग-परिवर्तन भी है जैसे आगि (सं० अग्नि, प्रा० अग्गि)। स्त्रीलिंग का चिन्ह केवल 'ई' था।

३ वचन

पाली में ही दो वचन—एकवचन, बहुवचन, मिलने लगे हैं। विद्यापति की भाषा में हिन्दी के अकारांत पुलिंग शब्दों की तरह सब शब्दों के दोनों वचनों में समान रूप होते हैं। बहुवचन के लिए—सब (सबेगेल), कताँ (कताँ जलासऊँ), जन (गुरुजन) संख्या—दुइ खञ्जन, षटऋतु, एत, कत

४ कारक

कर्त्ता० (१) ए (२) एँ (३) चन्द्रबिन्दु

करण० (१) एँ (२) एं (३) न्हे

अधिकरण० (१) ए (२) एँ (३) चंद्रबिन्दु (४) हि या अहि

सम्बन्ध ० (१) क, काँ, एरि। सर्वनामों के साथ केवल र या रा विभक्ति आती है।

सम्प्रदान० कोई विभक्ति नहीं, परन्तु 'लागि'

कर्म० के, के, चंद्रबिन्दु मात्र

अपादान० सञो, चाही या तइ का भी प्रयोग होता है (चाहि)। कभी-कभी चंद्रविंदु से भी अपादान का बोध होता है जैसे कमलँ झरए मकरन्दा

५ संख्याकारक

तत्सम—एक, षट्, पञ्च

तद्भव—दुअ, दुहु, दुइ, चारि, दस, दह, दो आदस, सोलह, सहस। दुअ (सं० द्वय), दुहु (दु=दुइ; दु=अव्यय

शब्द, ही), दुइ (सं० द्वय), चारि = सं० चत्वारि, दस = सं० दश, प्रा० दस, अ० दह; दो आदस = सं० द्वादश, प्रा० दो ओदस। सोलह = सं० षोडश, पा० सोरह या सोलस प्रा० सोलह, सहस्र = रेफ का लोप होकर सहस

६ सर्वनाम

(क) उत्तमपुरुष

हम

कर्त्ता—हम हमे, मए, मञे

कर्म और सम्प्रदान—मो, मोहि, हमलागी (केवल सम्प्रदान)

सम्बन्ध—मोर, मोरा, हमर, हमारा (स्त्रीलिंग, विशेषण मोरि), मो (विकारीरूप, सं० मम)

कर्म और सम्प्रदानकारक—मो + हि = मोहि

(अधिकरण कारक की विभक्ति)

इनके अतिरिक्त सम्प्रदानकारक में हम+लागि का भी प्रयोग होता है। छंद के अनुरोध से हमर या हमारा (प्रा० अम्हारा *या महारा)*

(ख) मध्यमपुरुष

तञ, तें, तए (सुनतए युवति)

तो (विकारीरूप—सं० तव)

तो + हि = ताहि = अधिकरण

प्राकृत का तुअ और संस्कृत का तव भी विद्यापति के पदों में मिलता है। अम्ह की तरह तुम्ह और पश्चिमी अपभ्रंश 'तुहु' से तुहुँ और 'तुहँ' बनते हैं।

(ग) अन्यपुरुष

जे, से (वह); सं० सं, तन्हि (विकारीरूप)

कर्ता—से, ते, तन्हि

कर्म, सम्प्रदान—ताहि, ताकें

सम्बन्ध—तोहारि, ताकर, तन्हिक (तनिक), तान्हिका (तनिका), तन्हिकर

अपादान—तासञो

(घ) निश्चयवाचक सर्वनाम

इ, एहु, एहि, एहे आदि समीपकार्थ

(ङ) अनिश्चयवाचक सर्वनाम

ओ, ओअ, ओहे, ओहु आदि दूरार्थक

(च) सम्बन्धवाचक सर्वनाम

जे, जेहे, जन्हिका, जासु, जाहि, जाकर

(छ) प्रश्नवाचक सर्वनाम

के, कि, की किदुहूँ, कओन (ने), काञें, कालागि, का लागि

(ज) अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कोइ, कउ, केओ (केअ)

(झ) निजवाचक

अपन, अपना (अवहट्ठ० अप्प अप्पु)

(ञ) अन्यान्यवाचक

सव, सबै, आन, आण, अओक, अओका, सकल (तत्सम), उभअ (उभय), निअँ (निज), इअर (इतर) आदि

(ट) सर्वनाम से बने हुए विशेषण और क्रियाविशेषण

कइसन, जइसन, तइसन

तत, एत, जत, कत, जतवा, ततवा, एतवा

अब, तब, जब, कब

तखन, जखन, कखन, एखन

तथि, जथी, एथी, कथी, जेथा

ततय, जतय, कतय, एतए

७ धातुरूप

संस्कृत प्रभाव—मैथिल क्रियाओं के बाद ति, सि आदि विभक्तियाँ छोड़ कर जाति, जासि, करसि, धरसि, बोलसि, पचारसि आदि का प्रयोग

१—तत्सम धातु

(क) उपसर्गरहित धातु

इच्छ, खण्ड, खेल, गल, गोप, घट, चल, चेत, छुट, जप, जिन्, तर, दुइ, धर, धव, निन्द, पीध्, पूज, पुर, वह, भर, भास, भाव, मिल, ला, वम, वस, बार, वारि, रम, मद, सूच, हर, हस

(ख) उपसर्गरहित धातु

अनुरञ्जन, अवगाह, निवेद, परिहर, विघट, विलस, विरच, संसर

२—अर्धतत्सम धातु

(क) उपसर्गरहित धातु

कर, कह, काछ, कान्द, काप, गह, गरज, गरस, गा, गान्त, गु, गोप, जा, जान, जाग, जीव, जोड़, तेज्, दा, दूल, धा, भस्, पल, परम, फुल, बान्ध, भन, भन्न, मान, पढ़, माख, फुज, रह, राख, री, लह, लज, लूल, लख, वरिस, सोह, हेर, मर

(ख) उपसर्गरहित धातु

आव, आन, उठ, उतर, उपज, उसर, निहार, निकस, पखाल, पसर, पहिर, पसाइ, पख, पराए, पिधि, पेख, विसर, विगस, सोम्य

३—तद्भव धातु

(क) उपसर्गरहित धातु

अछ, काढ़, खा, धुर, छाड़, जर, झर, झाँप, झंख, थाक, देख, नाँच, नुका, पूछ, थार, बुझ, बोल, गुल, मेट, भभोड़, रो, सझ, सिझ, हो या हु, चूक

(ख) उपसर्गरहित धातु

पजार, पलट, पिक, समार, ओछाए, ओछोल, परस; ऐसे शब्द जिनकी उत्पत्ति अज्ञात हैं जैसे फदोयल, चाँपिहेल, चाह, वेसाह, चाह, उभकल

४—गौण या मौलिक धातु

(क) प्रेरणार्थक—पारे (पारमति), पसारे (प्रसारयति)

(ख) नाम धातु—उगे, छिने, तिते, सुत, सु, ऊनितसि

(ग) संयुक्त धातु—जागि जाएत, गेल सुखाए, कहहि जाए, चूकब

(घ) अनुकरण धातु—विद्यापति में अनुकरण धातु लगभग नहीं है। धनि, झाँझि जैसे कुछ इने-गिने शब्द ही मिलेंगे।

अर्थ

विद्यापति के पदों में निश्चयार्थक और आज्ञार्थक दो ही तरह की क्रियाएँ पाई जाती हैं। आज्ञार्थक क्रियाओं का भी प्रयोग केवल अन्यपुरुष तथा उत्तमपुरुष में पाया जाता है जैसे

पसरओ बीथी मेम पसार

(अन्यपुरुष)

चल चल माधव, बुझल सरूप

(मध्यमपुरुष)

काल

(१) मौलिक काल के प्रयोग—निवेदओ, बोलओ

उत्तमपुरुष—कहओ

मध्यम० संस्कृत विभक्ति-सि का प्रयोग, इ का वर्तमानकाल में प्रयोग

अन्य० इ, ए और कि (सम्मानसूचक) विभक्तियों का प्रयोग जैसे भनइ विद्यापति ई रस जान तलितहुँ तेज मिलए अन्धकार; जाथी, भनथि, बोलथि, इत, हिँ का प्रयोग

(२) कृदन्त से बना काल

भूतकाल में इअ, हुअ (हुआ), हुअउँ, करिअउँ का प्रयोग हुआ है। विद्यापति के पदों में भूतकाल की विभक्ति 'ल' है जैसे हरल, भेल, गेल, राखल, जानल, गुनल। 'ल' का प्रयोग सब पुरुषों में होता है जैसे

अन्यपुरुष—हरखे आरति हरल चीर

मध्यम०—एत दिन मान भलेहुँ तहि राखल

उत्तम०—भल न कएल, भवे देल विसवास। 'ल' के बाद उहुँ या उहु जोड़ कर भी उत्तमपुरुष की क्रिया बनती है—न घर गेलुइ, न पर भेलुहुँ। इसी प्रकार 'ल' के बाद 'ह' जोड़कर भी मध्यमपुरुष की क्रिया बनती है जैसे भेललह, सोम्पलह; केवल ल की अपेक्षा लह का प्रयोग भी अधिक है। अन्यपुरुष में ल के बाद न्हि का प्रयोग मिलता है—कएलन्हि, पिउलन्हि; ल के बाद 'क' भी जुड़ सकता है—पुछुलक।

भविष्यत्काल की बिभक्ति ब है। जैसे—

अन्यपुरुष—नागरे कि करब नागरि भाए

मध्यम०—अबे करब नहि मान

उत्तम—सखि कि कहब

मध्यमपुरुष में 'व' के बाद 'ह' भी जोड़ा जाता है जैसे से कैसे जएबहि तरि

अन्यपुरुष के लिए त का प्रयोग जैसे अवसर जानि जे मिलत मुरारि

पूर्वकालिक क्रिया

बिद्यापति में पूर्वकालिक क्रिया के लिए तीन प्रत्ययों का प्रयोग होता है : (१) इ या ई (२) ए या एँ (३) हए जैसे हसि निहास पलट हेरि, चरन नेपुर उपरसारी, मुखरभेखर करे नेवारी, जत अनुराग राग कै गेल, सखि बुझावए धरिए हाथ

क्रियार्थक संज्ञाएँ

निम्नलिखित प्रत्ययों के योग से संज्ञार्थक क्रियाएँ बनती हैं—

(१) अन (संस्कृत प्रत्यय)—गमन, चेतन

(२) इ—मारि, गारि

(३) ई—हसी

(४) ए—बहए लागल

(५) ब—देखब, करब

(६) ल—ओ कहल करतै छथि

संयुक्तकाल

विद्यापति में संयुक्तकाल के भी कई रूप मिलते हैं जैसे राज सुनै छिअ चान्दक चोरि, घर घर पहरी गेल छ जोहि, गेलाह अछि, कएलन्हि अछि

प्रेरणार्थक क्रियाएँ

विद्यापति की भाषा में आओ, आव, तथा आय या आए जोड़ कर प्रेरणार्थक क्रिया बनती हैं—बरिसि (अमि गया ओल जोगि)

नामधातु

जनमए, जनमु, सुतसि (सुत), अङ्गिरि (अङ्गीकार), चापि (चाप)

अछ्, हो, थाक, रह क्रियाओं के रूपों को प्रेरणार्थक में भी प्रयोग में लाते हैं।

पुनरुक्तधातु

जैसे 'चहकि चहकि दुइ खञ्जन खेल' में पुनरुक्त पूर्वकालिक क्रिया पाई जाती है।

संयुक्तक्रिया

विद्यापति ने कितनी ही संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग किया है—करए कि पारे ? नुकि गेल, जागि जाएते, सहए पार, गेल सुखाए, इत्यादि

प्रत्यय और उपसर्ग

तद्भव प्रत्यय—अ, अन, आ, आँह

रचनात्मक प्रत्यय—आर, आरी, आल, आव, आस, इ, ई, नि, नी, पन, र स, सर

उपसर्ग—अ, कु, नि, वि, स, सु

परिशिष्ट

१

सूरदास और विद्यापति

सूरदास और विद्यापति दोनों कृष्ण को अपना काव्य-विषय बनाया है, दोनों में भक्ति के दर्शन मिलते हैं, दोनों ने काव्य की अनेक शास्त्रगत विशेषताओं पर ध्यान दिया है, अतः उनका तुलनात्मक अध्ययन उचित होता है।

सूरदास का काव्य-क्षेत्र भक्ति और काव्य दोनों के क्षेत्र में विद्यापति से अधिक व्यापक है। भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने भगवान कृष्ण को पुत्र के रूप में, बालक के रूप में और राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी को प्रेमियों के रूप में देखा है और इस तरह वात्सल्य, सख्य और मधुर रस की भक्ति को काव्य और लीला-गान द्वारा उपलब्ध किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दास्य-भाव से भी भक्ति की है जो वल्लभाचार्य के पुष्टिमत में दीक्षित होने से पहिले की बात है। परन्तु विद्यापति की भक्ति केवल राधा-कृष्ण के लिए लीला-गान से ही प्रसन्न हैं। उन्होंने बाल-कृष्ण और किशोर कृष्ण के दर्शन नहीं किये। उनके कृष्ण तरुण प्रेमी हैं। सख्य भाव की झलक भी उनके काव्य में नहीं है। हाँ, महादेव, चंडी और गंगा के प्रति उन्होंने सामान्यभाव से भक्ति-भाव प्रकट किया है।

काव्य के क्षेत्र में दोनों का काव्य श्रृङ्गार-प्रधान है। अतः यही क्षेत्र तुलनात्मक अध्ययन का हो सकता है। विद्यापति ने सयोग श्रृङ्गार का, विशेषकर मिलन-सुख, का वर्णन सूर से कहीं अच्छा किया है।

य पि विप्रलम्भ के भी उत्कृष्ट पद हमें मिलते हैं परन्तु उनमें कृष्ण और गोपियों का संकेत नहीं है--

सूर—बिछुरे श्री ब्रजराज आजु इन नैनन ते परतीति गई।
उठि न गई हरि संग तबहि ते है न गई सखि श्याम मई ॥

विद्यापति—लोचन धाए फेघाएल हरि आएल रे
शिव शिव जिवओ न जाए आसे अरुझायल रे
मन करि तहाँ उड़ि जाइअ जहाँ हरि पाइअ रे
प्रेम परस मनि जायि आनि उर लाइअ रे

सूर—जब ते पनिघट जाऊँ सखीरी वा यमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलत हैं इन नैनन के तीर ॥

विद्यापति—हरि हरि विलपि विलापिनि रे लोचन जल धारा।
तिमिर चिकुर घन परसल रे जनि बिजुलि अकारा ॥
उठि उठि खसए कत जोगिनि रे बिछिया जुग जाती।
पवन पलट पुनि आओत रे जनि भादव राती ॥

विद्यापति की इन पंक्तियों में अत्यन्त वेदना के दर्शन होते हैं—

तन आभरन वसन भेल भार
नयन बहै जल निर्मल धार

परन्तु हृदय की इस अधीरता का वर्णन विद्यापति में असम्भव है—

मधुकर इतनी कहियहु जाइ
अति कृश गात भई ये तुम बिनु परम दुखारी गाय
जल समूह बरसत दोउ लोचन हूकति लीने नाउँ
जहाँ जहाँ गो दोहन कीनो सूँघत सोई ठाऊँ
परति पछार खाइ छिन ही छिन आति आतुर ह्वै दीन
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं नारि मध्य ते मीन

सूरदास की प्रकृति कोमल रसों की ओर अधिक है, परुष रसों की ओर कम। यही बात विद्यापति के सम्बन्ध में भी कही जाती है। उन्होंने ताण्डव नृत्य का जैसा कोमल स्वरूप उपस्थित किया है, उससे इस बात की पुष्टि होती है, यद्यपि कीर्तिलता में उन्होंने बीर रस को भी अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में उपस्थित किया है। दोनों कवियों ने विप्रलम्भ के उद्दीपन के लिए प्रकृति का समर्पण किया है और प्रसंग वश उसमें बीर भाव की भी स्थापना की है—

सूर—उनै उनै बरसतु गिरि ऊपर धार अखिडत तीर
अन्ध धुन्ध अम्बर तें गिरि पर, मानों ब्रज के तीर
चमकि चमकि चपला चकचौंधति स्याम कहत मन धीर

अथवा

घटा घनघोर घहरात अररात दररात सररात ब्रज लोग डरपैं
तोड़ित आघात तररात उतपात सुनि नारि नर सकुचि तनु प्राण अरपैं

तो विद्यापति कहते हैं—

बरसि पयोधर धरनि वारि भरि रैनि महाभय भीमा।

अथवा

झम्पि घन गरजन्ति सन्तति भुवन भरि बरसन्तिया
कन्त पाहुन काम दारुन सघन सररात हन्तिया
कुलिस कत सत पात मुदित मयूर नाचत मातिया
मत्र दादुर डाक डाहुक फाटि जाएत पातिया
विद्यापति कह कैसे गयाओल हरि बिना दिन रातिया

अथवा

तरल तर तरवारि रंगे बिज्जु हाथ छुटा तरके
घोर घन संघात वारिस काल दरसेओ रे

परन्तु न साधारण रौद्र रस का कोई पद पदावली में है, न प्रकृति के यथार्थ सौन्दर्य का—

सूर—सिन्धु तट उतरत राम उदार

रोष विषम कीनो रघुनन्दन सब बिपरीत विचार
सागर पर गिरि, गिरि पर अम्बर, कपि घन पर आकार
गरज किलंका आघात उठत मनु दामिनि पावक झार
परत फिराइ पयोनिधि भीतर सरिता उलटि बहाई।
मनु रघुपति भयभीत सिन्धु पत्नी प्योसार पठाई ॥

या

ब्रज के लोग उठे अकुलाइ
ज्वाला देखि अकास बराबरि दसहुँ दिसा कहुँ पार न पाइ
झरहरात बन पात गिरत तरु धरनी तरकि तड़कि सुनाइ
लटकि जात जरि जरि द्रुम बेली पटकत बाँस-कास कुसवाल
उचटत फिर अंगार गगन लौं सूर विरखि ब्रज जन बेहाल

सूर के "अद्भुत एक अनूपम बाग" और विद्यापति ने "माधव कि कहव सुन्दरि रूपे" की तुलना डा० जर्नादन मिश्र ने इस प्रकार की है—

"दोनों पद के छंद और भाव भी एक ही से हैं। दोनों का वर्णन अपूर्व है। किन्तु इस वर्णन में अनेक अंश में विद्यापति सूरदास से श्रेष्ठ मालूम होते हैं। सूर का पद है—

जुगल कमल पर गजबर क्रीड़त ता पर सिंह करत अनुराग

कमल बन में गज का क्रीड़ा करना स्वाभाविक और सुन्दर है। दोनों चरण ही दो कमल हैं। उनके ऊपर दो हाथियों का घूमना-फिरना अच्छा नहीं मालूम होता। यदि 'गजवर' से हाथी की सूँड़ को ग्रहण किया जाए तो इसके द्वारा कमल का स्पर्श होना निःसन्देह अच्छा लगता है। इस सूँड़ के ऊपर सिंह प्रेमपूर्वक बैठा हुआ है।

विद्यापति लिखते हैं—

पल्लवराज चरण जुग सोभित गति गजराजक भाने
कनक केदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने

"जुगल कमल" और "पल्लवराज चरण युग" में विद्यापति की रचना सूरदास से सुन्दर है। जंघा के लिए कनक कदली की कल्पना भी हाथी के सूँड़ की कल्पना से अवश्य सुन्दर है। सूर की पंक्ति में "गजवर" शब्द से यह स्पष्ट नहीं मालूम होता कि उसकी नायिका की गति अपेक्षित है अथवा जंघा। विद्यापति ने 'गति गजराजक' लिखकर इस सन्देह को दूर कर दिया है। एक दूसरे पद में कवि ने चरणों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

"कमल-जुगल पर चाँदक माल
तापर उपजल तरुण तमाल"

चाँद की माला नई कल्पना है। सूर के पद में है—

"गिरि पर फूले कंज पराग"

विद्यापति लिखते हैं—

"मेरु उपर दुइ कमल फुलाएल नाल बिना रुचि पाई"

सूर ने गिरि के ऊपर कमल के साधारण विकास का वर्णन किया है। किन्तु विद्यापति ने कमल में नाल का अभाव बताकर इसी कल्पना को सुन्दर बना दिया है।

सूर की पंक्ति है—

हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।

इसमें ह्रस्व स्वर का प्रयोग और इकार की बहुलता पद को ललित बना देती है। बाहरी सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन है।

विद्यापति की पंक्ति है—

मनिमय धार हार बहु सुरसरि तहँ नहिं कमल सुखाई

इसका कोमल बंध सूर की पंक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। इसकी विशेषता कि बाहरी सौन्दर्य के सिवा यह कमल के सूखने के कारण की कल्पना कर आन्तरिक सौन्दर्य का भी विकास करता है।

२

गोविन्ददास और विद्यापति

गोविन्ददास[1] और विद्यापति दोनों मैथिली कृष्ण-काव्य के गायक हैं। गोविन्ददास पर विद्यापति का ऋण अवश्य है, इस बात को स्वयम् गोविन्ददास ने स्वीकार किया है।[2] इस समय तक वल्लभाचार्य द्वारा बालकृष्ण की प्रतिष्ठा हो चुकी थी और चैतन्य एवं विट्ठलनाथ ने राधा की महत्ता को स्वीकार कर उनके महाभाव को भक्तों के आदर्श बना दिया था। अतः गोविन्ददास के गीतों में हम उन कई नई प्रवृत्तियों को पाते हैं जिनका विद्यापति के गीतों में कहीं दर्शन नहीं होता। यह हैं

(१) बालकृष्ण का वर्णन एवं कृष्ण के बाल-जीवन-सम्बन्धी पद

(२) राधा की पूजा का भाव। कुछ परकीया की भावना लिए।

(३) स्पष्ट रूप से भक्ति-भावना का निर्देश

परन्तु जिन सम्प्रदायों में राधा को स्थान मिला था उनमें परोक्ष रूप से शृंगार रस की प्रतिष्ठा हो गई थी। कवि कृष्ण-राधा को नायक-नायिका के रूप में चित्रित करता था। यदि कहीं कहीं प्रतीकार्थ अभीष्ट भी था तो वह अत्यन्त निर्बल था। जब उसने कृष्ण-राधा के नायक-नायिका रूप को स्वीकार कर

---

[1] इनका जन्म समय १७वीं शताब्दी का चतुर्थांश है।

[2] कविपति विद्यापति मतिमान

जाक गीत जगचित्त चोराएल गोविन्द गौरि सरस रस गान

भुवने अछि जत भारती आनि

ताकर सार सार पद सन्चए बाधलि गीत कतहुँ परिमान

लिया तो उस पर शृङ्गार रस के ग्रन्थों, विशेषकर गीत गोविन्द, का प्रभाव पड़ा। हम बता चुके हैं कि विद्यापति पर गीत गोविन्द और काव्यप्रकाश, अमरुशतक आदि शृंगार-प्रधान ग्रन्थों का प्रभाव है। जहाँ कवि रीति-निरूपण की ओर अधिक झुका, वहाँ राधा-कृष्ण-चरित्र होते हुए भी भक्ति गौण हो गई, काव्य एवं रसिकता अधिक। विद्यापति के कृष्ण-काव्य में यही बात है। गोविन्ददास का काव्य स्पष्टतः भक्ति-प्रधान है परन्तु उन्होंने जयदेव और विद्यापति की काव्य-परिपाटी भी निभाई है। वास्तव में कृष्ण-कवियों में लीलागान और शृङ्गार-भावना इतनी मिलती-जुलती है कि उन्हें केवल कवि या केवल भक्त कहना कठिन है। इसीलिए उन्हें लेकर विरोधी अखाड़े खड़े हो गये हैं।

गोविन्द गीतावली के मंगल श्लोक से कृष्ण-कवियों का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है और हम जानने लगते हैं कि उनकी किस प्रकार की भक्ति थी—

ध्वज वज्रांकुश पङ्कज कलितम्, व्रज बनिता कुच कुंकुम ललितम्
वन्दे गिरिवर धर पद कमलम्, कमलाकर कमल चितय मलयम्
मंजुल मणि नूपुर रमणीयम्, अचपल कुल रमणी कमनीयम्
अति लोहित मति लोहित मासम् मधु मधुपीकृत गोविन्ददासम्

कवि राधाकृष्ण की युगल जोड़ी की नवधा भक्ति के सभी प्रकारों से पूजा करना चाहता है—

श्रवण कीर्तन स्मरण वन्दन पाद सेवन दास
पुजन ध्यान आत्म निवेदन गोविन्ददास अभिलाष

परन्तु यह स्पष्ट है कि इन सभी के मूल में राधा कृष्ण का मधुर केलि-विलास है। मध्ययुग के कृष्ण-कवियों की भक्ति इसी प्रकार की थी।

विद्यापति का नखशिख वर्णन-अलंकारिक है। उसमें नायक के सौन्दर्यांकन का भावना अधिक है भक्ति की कदाचित बहुत कम। गोविन्द दास के सौन्दर्यांकन में सब बातें इसके विपरीत हैं। उन्होंने क्रम-बद्ध नखशिख-वर्णन की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया यद्यपि उनकी सौन्दर्य सृष्टि विद्यापति से कम सुन्दर नहीं है।

अरुणित चरण रणित मणि मंजिर अध पद चलनि रसाल
कंचन बंचन बरसन मरजन बलित ललित बन माल
घनि घनि मदन मोहनिया
अंगहि अंग अनंग तरंगय माँगिय नयन नचनिया
माझहि क्षीण पीन उर अन्तर आरत अरुण किरण मणिराज
कुंजर करम करहि कर बन्धन मलयज कंकण वलय विराज
अधर सुरागिनि मुरलि तरंगिनि बिगलित रागिनि हृदय दुकूल
मातल नयन भ्रमर जनु भमि भ्रमि ऊड़ परत श्रुति उतपल मूल
गोरोजन तिलक चूड़ चालक बिधु वेढ़ल रमाणी मन मधुकर माल
गोविन्द दास चित नित विहरय श्री नागर वर तरुण तमाल

भक्ति-भावना के मिलने से गोविन्ददास के पद विद्यापति के पद से कहीं अधिक प्रभावशाली हो गये हैं—

मरकत मंजु मुकुट मुख मंडल मुखरित मुरलि सुतान
सुनि पशु पाखि शाख कुल पुलकित कालिन्दी बहय अजान
कुंजे सुन्दर श्यामल चन्द
कामिनि मनहि सुरतिमय मनसिज जग जन नयन अनन्द
तनु अनुलेपन घन सार चन्दन मृगमद कुंकुम पंक
अलि कुल चुम्बित अवनि विलम्बित बनि मनमाल विटंक
अतिशय कोमल चरण तल शीतल जीतल शरदारबिन्द
कत-कत भगत मधुप आनन्दित वंचित दास गोविन्द

इसके अतिरिक्त गोविन्ददास के पद विद्यापति के पद से कम रीतिपूर्ण और इसी कारण अधिक सरस है। अनेक प्रसंगों

में उन्होंने विद्यापति को आदर्श मानकर उनके ढंग को अपनाया है परन्तु अनेक स्थलों पर वे पूर्णतया मौलिक हैं।

(१) रस का व्यंजनात्मक (सङ्केतात्मक) वर्णन

ओ नव जलधर अंग
इह थिर विजुरि तरङ्ग
ओ नर मरकत जान
इह काञ्जन दश बान
राधा - माधव मेलि
सुरति मदन रस केलि
ओ तनु तरुण तमाल
इह हेमि यूथि रसाल
ओ नव पदुमिनि साज
इह मत मधुकर राज
ओ मुख चरन इजोर
इह दिठि लुबुध चकोर
अरुण नियर पुनि चन्द
गोविन्ददास रहु धन्ध

(२) द्यूत क्रीड़ा (अक्ष क्रीड़ा)

वृषभानु नन्दिनी नन्द नन्दन निकुंज मन्दिर मांह
केलि कुंज तर शोभित कानन कल्प तरुवर छाँह
नीप तरुवर पल्लव फुल भर परसि बहय सुधीर
फुल्ल मालति कमल माधवि बहय मंद समीर
मातल अलि कुल सारि सुक पिक नाचय अनुछन मार
राहि-कान्ह दुहू धूत खेलिय हरि राखिय हार
चौदिश वांखिख ललिल सखीगन वसन भूषण साज

जेहन जलधर उगे सुधाकर शोभित उडुगण माँझ
राहि अवधरि जितय लागलि दश कि पँच कहि आन

कतहुँ रितुपति उदित भैगेल हेरि आकुल कान्ह
श्याम चंचल करय चुम्बन करय टारय गोरि
रोष लोचन कमल मानल भाँगि जलचरि मोरि
राहि जीतल हारल माधव धयल राहिक हार
रोष राहि पुन हार धरि रहु छिड़े दुहुक मार
मदन कल है भंगि दुहकर देखि सखि गन हास
पुनह खेलत हार धरि रहु वदत गोविन्द दास

गोविन्ददास के अधिकांश वर्णन चलचित्र जैसे हैं एवं नाट्य-प्रधान हैं। उदाहरण के रूप में उनके रास-वर्णन और फाग-वर्णन उपस्थित किए जा सकते हैं। उनमें कल्पना का विलास ही अधिक है, हृदय-भावना का विस्तार नहीं है। गोविन्ददास ने वृन्दावन का स्वतंत्र रूप से सुन्दर वर्णन किया है यद्यपि उनका प्रकृति-दर्शन काव्य-रूढ़ि से मुक्त नहीं हो सका।

तरु तरु नव किसलय चन लाख
कुसुम भरे कत अवनत शाख
ताहि शुक शारिणी कोकिल बोल
कुंज निकुंज भ्रमर कर रोल
अपरुप श्री वृन्दावद मांझ
षट ऋतु सतां बसंत ऋतुराज
विकसित किसलय कमल कदम्ब
मालति माधवि मिलि तरु लम्ब
कहु कहु सारस हंस निशान
कहु कहु दादुर उन्मत गान

कहु कहु चातक पिउ पिउ सोर।
कहु कहु उन्मंत नाच चकोर॥
गोविन्द दास कह अपरुब कांति।
चौदिस बेढ़ल कुसुमक पाँति॥

गोविन्ददास ने अभिसार के बड़े सुन्दर वर्णन किये हैं, कदाचित् विद्यापति से भी सुन्दर। विद्यापति के काव्य में दिवसाभिसारिका का चित्रण नहीं है। गोविन्ददास इस पर सुन्दर रचना उपस्थित करते हैं—

१ श्याम अभिसारे चलति सुन्दरि धनि नव नव रंगिनि साथे
नाम श्रवण मूले शत दल पङ्कज कामजय फुल धनु हाथे
भालहि सिन्दुर भानु किरण जनु तहिं चारु चन्दन बिन्दु
मुख हेरि लाज में सामरे लुकायल दिन दिन छीण भेल इन्दु
२ दिन मणि किरण भेलि मुख मंडल
घाम तिलक बहि गेला।
कोमल चरण पथ बालुक आतप दहब सब भेला

कृष्णाभिसार का एक चित्र देखिए—

नीलिम मृगमद तनु अनुलेपन नीलिम हार उजोर।
नील वलयगण भुज जुग मंडित पहिरन नील निचोल॥
सुन्दरि हरि अभिसारक लागि।

नव अनुराग गौरि भेलि शामरि कुहु भामिनि भय भागी॥
निज अलकाकुल अलि कुह लोलित नील तिमिर चलु गोइ।
नील नलिन जनु श्याम सिंधु रस लखइ न पारय कोइ॥
नील भ्रमरगण परिमल धावई चौदिश करत झँकार।
गोविन्ददास एतय अनुमानल राहि चलति अभिसार॥

वास्तव में गोविन्ददास में हमें चंडीदास, विद्यापति, जयदेव एवं ब्रज-भक्त-कवियों—सभी का प्रभाव मिलता है। इसका

का कारण यह है कि यद्यपि कवि मूलतः भक्त है तथापि कृष्ण के बाल-रूप से परिचित होते हुए भी उसने राधा के साथ उनकी मधुर प्रणयलीला को ही अपने गीतों का विषय बनाया है और इसीलिए उसे जयदेव और विद्यापति के क्षेत्र को स्वीकार एवं ग्रहण करना पड़ा। इसी से उसने पूर्वराग, दूती, मान, अभिसार, विरह—सभी की प्रतिष्ठा की है। फलतः उसके काव्य में राधा कृष्ण का नायक-नायिका रूप ही प्रधान है। हाँ, उसकी राधा-में न चंडीदास की-सी विरह-तन्मयता है, न विद्यापति की-सी स्थूलता। वह बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक सौन्दर्य दोनों के मिश्रण से राधा की एक अभिनव मूर्ति का निर्माण करता है।

गोविन्ददास की विशेषताएँ उनकी अलंकार रहित, आडम्बर-शून्य भाषा और उसमें सन्निहित भक्ति-भावना है। उनके पदों में शृंगार और काव्य-रीति तथा भक्ति का मेल है। अनेक प्रभावों को आत्मसात करके उनकी कविता पुष्ट हुई है। गोविन्ददास की भाषा विद्यापति की भाषा से कहीं अधिक प्रौढ़ है, यह गोविन्ददास पदावली से स्पष्ट है। विद्यापति के समय में मैथिली अवहट्ठ (अपभ्रंश) से अलग होकर स्वतंत्र रूप धारण कर रही थी। एक तरह से उनकी भाषा "देसिल वैयना" "अवहट्ठ" का ही रूप है। उनके सौ-सवा सौ वर्ष बाद (गोविन्ददास के समय में) मैथिल प्रयोग-प्राचुर्य के कारण स्वभावतः अधिक प्रौढ़ हो गई होगी।

गोविन्ददास की रचना में बालकृष्ण से लेकर मथुरा-गमन तक की सब कथा आ जाती है, परन्तु अत्यन्त विच्छिन्न रूप में। इससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने कृष्ण के जीवन-क्षेत्र का विस्तार विद्यापति से अधिक दिखाया है। नीचे के उदाहरणों से यही प्रकट होगा—

१ मंदिर बाहर थल अति सुन्दर तह साजय अनुपाम।
विचित्र सिंहासन रङ्ग पटाम्बर लम्बित मुक्ता दाम॥

शोभा बनि अपरूप।

गोप गोआल सभागन द्विजगन बैठल ब्रजक भूप॥
कोइ कोइ गायल कोइ बजाओत नाचत धरतहि ताल।
कोइ चामर लेइ बीजन करतहि उजोर दीप रसाल॥

२ सभाजन बैठल दुनु भाई

३ गोबिन्द आओत गोधन संगे।

जैसन कमल निहारय दिनकर तैसन ब्रज बधु रङ्गे॥
वेलि अवसान हेरि यदुनन्दन वेरा पुरमिति धेनु फीरे।
गहन गुहर गिरि कानन जैसे धेनु मिलल जमुना तीरे॥

४ साँझ समय गृह आओत व्रज सुत यशोमति आनन्द चीत
दीप ज्वालि थालि पर करलहि आरति कतहि आओत गीत

५ निज गृह शयन करल जब कान

जननी जगावत भेल विहान
आलस तेजि उठइ यदुराइ
आगत भानु रजनि चलि जाय
प्रातहि दोह करत यदु चाँद
तुरितहि लेओल दोहन छाँद

इन प्रसंगों के अतिरिक्त (जिनके लिए गोविन्ददास स्पष्टतः ब्रजभाषा कवियों के ऋणी हैं) उन्होंने स्वकीया रूप में राधा की बड़ी सुन्दर कल्पना की है। यशोदा बहू राधा को बुला रही है—

यशोमति यतन सखी से कहतहि तुरित गमन करताहि
हमरि सन्देश कहबि तब गुरु जन आनवि रसवति राहि

रतन थार भरि पूर

विविध मिठाई खीर दधि सोकर बहु उपहार मयूर
कपुर ताम्बुल हेरि मनोहर वासित चन्दन कटोर
सहचरि थारि चीर देय झाँपल गोविन्द दास मन मोर
शिर पर धारि यतन कर धरलिह राहिथ मन्दिर गेल
यशोमति वचन कहल सब गुरुजन सो सब अनुमति देल

सुन्दरि सखि संगे करल पयान

रंग पटाम्बर झाँपल सब तनु काजर उजोर नयान
दशनक ज्योति मोतिन्ह समतुल हंसैत खके मनि वसनि
कांचन किरण वरण नह समतुल वचन जिनिअ पिक सानि
कर पद तल थल कमल दलारुण मंजिर रुनझुनु वाज
गोविन्द दास कह रमणी शिरोमणि जितल मनमथ राज

कृष्ण-साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि बराबर राधाकृष्ण के प्रेम-प्रसंगों अथवा लीलाओं में अपने प्रांत की परिचित बातों को जोड़ते रहे हैं। सभी ने राधाकृष्ण लीला को अपने-अपने लौकिक आचारों और दैनिक जीवन के बीच से अपनाया है। पूर्व में योगियों के सम्बन्ध में जो दंत कथायें थी, उनका प्रयोग देखिये—

गोरख जगाइ शिंगाध्वनि सुनयित जटिला सिख आनि देल।
मौनी योगेश्वर माथ हिलायत बूझल भिख नहि नेल॥
जटिला कहत तब काहा तुहु माँगत योगी कहत बुझाइ।
तोहर बधू हात भिख हम लेयब तुरतहि देह पठाइ॥
पतिवरता बिनु भीख लेब जब योगी बरत होइ नास।
ताकर वचन सुनिते तनु पुलकित धाइ कहे बधु पास॥
द्वारे योगेश्वर परम मनोहर ज्ञानी बूझल अनुभाष।
बहुत यतन करि रतन थालि भरि भीख देइत तहि ठाय॥

सुनि घनिराइ श्राइ करि उठल योगी नियरे हम जाव ;
जटिला कहत योगी नहि आन सन दरशन होयत लाभ ॥
गोधुम चूर्ण पूर्ण थाली पर कनक कटारे भर घीउ ।
कर जोर राइ लेइ कर फुकरइ ताहि हेरि थरि-थरि जीउ ॥
योगी कहत हम भिख नहि लेयब तुश्र मुख बच एक चाहि ।
नन्द नन्दन पर जो अभिमान के माफ करइ सब जाहि ॥
सुनि घनि राइ चीरे मुख झाँपल मेषव धारी नट राज ।
गोविन्ददास कह नटवर शेखर साधि चलल मन काज ॥
(गोविन्ददास)

३

पूर्व में मध्य युग की वैष्णव धारा

वैष्णव कृष्ण-भक्ति का एक केन्द्र पूर्व में जयदेव से बहुत पहले स्थापित हो गया था। जयदेव ने गीत गोविन्दम् में उमापति का कथन किया है। विद्वानों का कहना है कि यह उमापति राजा लक्ष्मण सिंह के दादा विजयसेन के राज-कवि थे। राधाकृष्ण के सबसे पहले गीत उन्होंने बनाये। विजयसेन के समय के एक शिलालेख में उनका नाम उमापति धर लिखा है। यदि वह उमापति धर राधा-कृष्ण-पदों के गायक उमापति ही थे, तो राधा-कृष्ण-साहित्य जयदेव से पहले (१२वीं शताब्दी ई० से पहले) ही पूर्व में आरम्भ हो गया था और इसका प्रारम्भ बंगला भाषा से हुआ। संस्कृत में हमें पद-साहित्य नहीं मिलता और जयदेव के पदों की शैली और उनके माधुर्य को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि उनके पहले इस प्रकार के गीत अवश्य लिखे गये होंगे और कदाचित लोक-भाषा में। इस प्रकार हम देखते हैं कि राधा-कृष्ण-साहित्य गौड़-देश के हिन्दू राज्य में अंकुरित हुआ। उमापति के गीति विद्यापति और अन्य भाषा-कवियों के सम्मुख अवश्य रहे होंगे। सम्भव है इन्हीं की लोकप्रियता से जयदेव को भी प्रेरणा मिली हो।

उस समय श्रीमद्भागवत अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। हिन्दू राज-दरबारों में उसका पाठ होता था। उत्तमोत्तम पंडित उसके अर्थ कहते थे। खुले दरबार में राजा सुनते थे। इससे शीघ्र ही राजाश्रय-प्राप्त कवियों का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था। राजा-महाराजाओं द्वारा भागवत् का आदर हिन्दू राज्यों में बराबर चलता रहा और इसने राधा-कृष्ण-साहित्य को प्रेरणा दी। सम्भव है प्रारम्भिक राधा-कृष्ण-काव्य भक्ति की प्रेरणा द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ हो, परन्तु राजाश्रय उसका कारण अवश्य था। जनता में अभी राधा-कृष्ण-भक्ति नहीं पहुँची थी। इसी कारण उसने कल्पना और काव्य परिपाटी का प्रभाव अधिक है, अनुभूति कम।

इसी राजाश्रय और राजाओं की भागवत्-प्रियता ने अन्तिम गौड़राज राजा लक्ष्मणसेन (११६८ ई०-११९९ ई०) के समय में जयदेव को गीत गोविन्दम् की रचना की ओर प्रेरित किया। ११९८ ई० में मुसलमान आक्रमणकारियों ने सेन राज्य को नष्ट कर दिया। इस समय तक मिथिला का राज्य-दरबार गौड़ राज्य का आश्रित था। सेन राज्य के नष्ट होने पर मिथिला ब्राह्मणों, पंडितों और कवियों का केन्द्र हो गया। इस समय काशी और मिथिला दो ही पंडितों के केन्द्र थे और लगभग १६वीं शताब्दी तक यही परिस्थिति रही।

मिथिला के हिन्दू राज्यों ने एक बार सेन राज्य को आदर्श मानकर फिर उसके ऐश्वर्य को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की। उनके यहाँ भी भागवत का बड़ा मान रहा यद्यपि जनता शैव थी। उन्होंने कवियों को सेन राज्य का अनुसरण करके बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दीं। राजा शिवसिंह ने विद्यापति को अभिनव

जयदेव की उपाधि दी थी, इससे यह स्पष्ट है कि वह सेन राज्य का स्वप्न सार्थक कर रहे थे। मिथिला केन्द्र में विद्यापति द्वारा राधा-कृष्ण काव्य की रचना हुई। उनके सामने उमापति और जयदेव की रचनाएँ थीं। उमापति की रचनाए मैथिल में मिलती हैं। इसका कारण उनका मिथिला में प्रचार ही है। सम्भव है विद्वानों में इनका प्रचार विद्यापति के समय में हो। विद्यापति के काव्य की तुलना जयदेव के गीत गोविन्दम् से करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली, भाव आदि की दृष्टि से उस पर गीत गोविन्दम् का बड़ा प्रभाव पड़ा है यद्यपि विद्यापति में मौलिकता की कमी नहीं है। जयदेव आदि की तरह विद्यापति का काव्य भी वैयक्तिक है, जनता की भावना का सहारा नहीं लेता। वह कल्पना, काव्य, कला और वैयक्तिक अनुभूति पर खड़ा है। उसके पीछे धार्मिक अनुभूति नहीं। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने लिखा है कि मिथिला में विद्यापति के राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद कदाचित् ही गाये जाते हैं, बंगाल में आप उन्हें सड़क चलते भिखारी से सुन सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति के समय तक राधा-कृष्ण साहित्य दो केन्द्रों में बन चुका था, परन्तु उसमें वैयक्तिक दृष्टिकोण, शृगार का पुट, काव्य-कला और कल्पना के दर्शन ही अधिक होते हैं धार्मिक अनुभूति के नहीं।

विद्यापति के बाद मिथिला में कई कवि हुए जिन्होंने राधा-कृष्ण सम्बन्धी मैथिल गीतों की परम्परा को बनाये रक्खा। इधर नवद्वीप में चंडीदास का जन्म हुआ। १४०६ ई० के पूर्व ही चडीदास ने अपनी रचनाएँ समाप्त कर दी थीं, अतः उनका

समय १४वीं शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश मानना होगा। चंडीदास वशूली देवी के मन्दिर के पुजारी थे परन्तु रामा धोबिन के प्रेम के कारण वहिष्कृत होकर सहजिया मत में दीक्षित हो गये। १०वीं शताब्दी के अंतिम भाग में लिखी हुई कानू भट्ट की पुस्तकों चर्याचर्यविनश्चय और बोधिचर्यावतार में पहली बार सहजमत के दर्शन होते हैं। इनके कितने ही स्थल गर्हित हैं, परन्तु उनमें रहस्यात्मकता अवश्य है। सहज मत स्त्री-पुरुष के प्रेम को ऊँचे स्तर पर उठाना चाहता था, यह कदाचित् सिद्धों के पापाचार के विरुद्ध प्रतिक्रिया हो। सहज मत में दीक्षित होकर चंडीदास ने उसके सिद्धान्तों को अध्यात्म और रहस्य भाव से इतना भर दिया कि कदाचित् उसके प्रवर्तकों ने इतनी उच्च भूमि की कल्पना भी नहीं की होगी। चंडीदास के समय तक बंगाल में राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग का खूब प्रचार हो गया होगा, अतः उन्होंने इस प्रेम को सहज मत के आदर्श प्रेम का रूप देने की चेष्टा की। वास्तव में उनके लिए राधा-कृष्ण प्रतीक मात्र थे। उनका विषय रहस्यात्मक, अतीन्द्रिय प्रेम था। उनके पद भी पूर्वराग, दौत्य, अभिसार, सम्भोग मिलन, मथुरा (विरह-प्रसंग) और भाव-सम्मिलन के अंतर्गत रखे जा सकते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार हमने विद्यापति के पदों का विश्लेषण किया है, परन्तु चंडीदास ने पांडित्य और शास्त्रज्ञान के स्थान पर अनुभूति का सहारा लिया है। उदाहरण के लिए पूर्वराग का प्रसंग चंडीदास और विद्यापति दोनों में हैं, परन्तु जहाँ विद्यापति ने स्नान-प्रसंग की अवतारणा कर सद्यः-स्नाता राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन वर्णन किया है, वहाँ चंडीदास की राधा के पूर्वराग का आधार केवल भाव-सम्मिलन मात्र है—

राधार कि हेल अन्तर व्यथा ।
से ये बसिया एकले थाकये विरले
ना शुने काहार व्यथा ॥
सदाइ घेयाने चाहे मेघ पाने
ना चले नयनेर तारा ।
विरति अहारे रांगावास परे
ये मन योगिनि पारा ॥
एलाहे त्रा वेनी फूलेर नाथूनि
देखये खसाये चूलि ।
आकुल नयने चाहे मेघ पाने
कि कहे दुराश तुलि ॥
एक दिठि करि मयूर मयूरी
कण्ठे करे निरीक्षणे ।
चंडीदास कय नव परिचय
बालिया बधुर सने ॥

चन्डीदास के समय तक जन-भावना ने राधाकृष्ण को स्वीकार कर लिया था। सहजिया मत से मिलकर इस भावना ने वह रूप प्राप्त कर लिया जो न उमापति में है, न जयदेव में। चंडीदास ने सहजिया मत के आधार पर राधा को परकीया का रूप दिया। इसी परकीया भावना के कारण उनका काव्य विद्यापति के काव्य से अलग श्रेणी का है। उसमें न काव्यकला का प्रभाव अधिक है, न उस कल्पना का जो विद्यापति और सूरदास की विशेषता है। वह कवि की प्रेमाकुल

आत्मा की उन्मुक्त उड़ान है। "पगला" चन्डी का हृदय उसमें पूरी तरह प्रस्फुटित हुआ है। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि चन्डीदास के समय तक परकीया की भावना ने वैष्णव सम्प्रदाय में प्रवेश नहीं किया था। चन्डीदास राधाकृष्ण के उपासक नहीं थे। वे वशूली देवी के उपासक थे। उन्होंने राधाकृष्ण का प्रयोग प्रतीक रूप में किया। नामों का प्रयोग मधुर रस ("परकीयारस") को स्थिर रूप में देने भर के लिए हुआ है। चन्डीदास के काव्य में जो व्याकुलता और तन्मयता है वह उनके अपने लौकिक प्रेम के कारण है। उस समय तक राधा-कृष्ण-भक्ति का रूप स्थिर नहीं हुआ था, यद्यपि वह काव्यकला और कल्पना से पुष्ट हो चुकी थी। चन्डीदास के पदों में यदि प्रतीक के पीछे धार्मिक भावना है तो उतनी ही जितनी भागवत में है। राधा आत्मा है, कृष्ण परमात्मा हैं। परन्तु शृंगार काव्य की परिपाटी का आश्रय लेने के कारण कहीं कहीं रूपक पूरा भी नहीं उतरा है। कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन के आविर्भाव से पहले पदों के रूप में जो राधा-कृष्ण चर्चा मिलती है, उसके आधार हैं (१) कालीदास का शृंगारिक काव्य (२) गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती आदि मुक्तक, (६) ह्रासोन्मुख संस्कृत काव्य के स्फुट श्लोक, (४) भागवत, (५) मम्मट आदि रीति-आचार्यों के ग्रंथ। भागवत की कृष्ण-लीला में प्रतीक-भावना मिश्रित है। भागवत-कार उसे स्थान-स्थान पर दृढ़ करते गये हैं। प्रबन्धकाव्य में इसकी काफी गुंजाइश था। छोटे-छोटे संन्दर्भहीन गेय पदों में विद्यापति और चन्डीदास ऐसा नहीं कर सकते थे।

बङ्गाल की जनता में कृष्ण-राधा का जो प्रचार हुआ था उसी के कारण मध्वाचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों में उन्हें स्थान दिया। कृष्ण ब्रह्म हुए। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति

निश्चित हुई। अब से बंगाल की राधाकृष्ण कथा को धर्म का सहारा मिला।

मध्वाचार्य के अनेक शिष्य हुए। उनमें से कुछ ने राधा-कृष्ण-भक्ति का विशेष प्रचार किया। माधवेन्द्र पुरी वृन्दावन जाकर रहने लगे। उस समय तक वृन्दावन किसी राधाकृष्ण भक्ति-सम्प्रदाय का केन्द्र नहीं हुआ था। माधवेन्द्र पुरी पहले बंगाली वैष्णव थे जिन्होंने वृन्दावन को अपना स्थान बनाया। वे मध्वसम्प्रदाय के लक्ष्मी तीर्थ के शिष्य थे। उन्होंने वृन्दावन में एक कृष्ण मन्दिर बनवा कर उसमें गोपाल कृष्ण की मूर्ति की स्थापना की। वे बंगाल से दो पुजारी अपने साथ ले गये और उन्हें मन्दिर का काम सौंपा। कृष्ण-मूर्ति के शृंगार के लिए चंदन और अगुरु लाने के लिए उन्होंने पुरी तक यात्रा की। माधवेन्द्र ने ही अद्वैताचार्य को भक्ति प्रदान की। वृन्दावन में उन्हीं के पास रहकर नित्यानन्द ने वैष्णव शास्त्रों का अध्ययन किया। माधवेन्द्र ने दक्षिण (श्री पर्वत आदि) की यात्रा की थी और वे दक्षिण के कृष्ण-भक्त वैष्णवों से अवश्य प्रभावित हुए होंगे। माधवेन्द्रपुरी के बंगाली शिष्यों में दो प्रमुख शिष्य केशव भारती और ईश्वर पुरी थे। अन्य पुण्डरीक विद्यानिधि और माधव मिश्र थे। केशव भारती और ईश्वर पुरी चैतन्य के गुरु थे और पुण्डरीक विद्यानिधि को चैतन्य गुरु की भाँति मानते थे।

माधवेन्द्रपुरी द्वारा गोवर्धन पर गोपाल कृष्ण की स्थापना के ५० वर्ष बाद चैतन्य की आज्ञा से दो बंगाली वैष्णव लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भ बंगाल छोड़कर वृन्दावन में रहने लगे। सम्भव है माधवेन्द्र पुरी के बाद उनका मन्दिर उपेक्षित हो गया हो और चैतन्य ने प्रचार-कार्य को आरम्भ करने के

पूर्व उसका पुनरुद्धार करना अवश्यक समझा हो। बंगाल की भक्ति रागानुग-प्रधान है; वह शास्त्रीय कम है, वैयक्तिक अधिक। इसलिए वृन्दावन में दूसरे कृष्ण-सम्प्रदायों पर उसका भाव अवश्य पड़ा होगा। इन बंगाली भक्तों और उनके शिष्यों में चैतन्य द्वारा ग्रहण किए गये विद्यापति और चन्डीदास के राधा-कृष्ण-गीत भी प्रचलित होंगे यद्यपि वे माधवेन्द्रपुरी के साथ ५० वर्ष पहले ही वृन्दावन पहुँचकर जनता के समकक्ष आ गये होंगे। इस समय भी दक्षिण ही भक्ति का केन्द्र था। १५११ ई० में चैतन्य भी दक्षिण गये थे।

परन्तु चैतन्य के भेजे हुए लोकमान्य गोस्वामी और भूगर्व का उतना अधिक प्रभाव जनता पर नहीं पड़ा जितना रूप-सनातन भाइयों का पड़ा। ये भी चैतन्य की आज्ञा से ही वृन्दावन आये थे। उनकी लोकप्रियता और प्रसिद्धि के विषय में यही कहना पर्याप्त होगा कि १५७३ ई० में अकबर ने उनसे भेंट की थी। इन दोनों ने अनेक वैष्णव ग्रन्थों की रचना की और उनके द्वारा बंगाल से दूर रहते हुए भी वहाँ के कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को सुगठित किया।[1] इनसे प्रभावित होकर राजा

---

[1] विदग्ध माधव, ललित माधव, उज्ज्वल नीलमणि, भक्ति रत्नामृत सिंधु (१५४१ ई०), नाटक चंद्रिका, दानकेलि कौमुदी, पद्यावली, संक्षेप भागवतामृत, हंसदूत, उद्धव सन्देश, स्तवमाला, हरि भक्ति विलास आदि। गौड़ीय भक्ति को भली भाँति समझने के लिए उज्ज्वल नीलमणि, भक्ति रत्नामृत सिंधु और हरि भक्ति विलास का अध्ययन अपेक्षित है। हंसदूत और उद्धव सन्देश कालिदास के मेघदूत से प्रभावित हैं। उज्ज्वल नीलमणि और रत्नामृत सिंधु में भक्ति के अनेक भेद किये गये हैं और उसमें शृंगार शास्त्र के भाव, विभाव,

मानसिंह ने १५६० ई० में वृन्दावन में गोविन्द जी का मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर इस सम्वत् में पूरा हुआ, शुरू कई वर्ष पहले ही हो गया था।

इन बंगाली वैष्णवों ने काव्य-शास्त्र के रस और अलंकार तत्त्व पर दृष्टि डाली और भक्ति को सामने रखकर उनकी नई परिभाषाएँ दीं। "चैतन्य चरित्रामृत" "साध्यसाधनातत्त्व" आदि वैष्णव ग्रन्थों में हमें रस के प्रति वैष्णवों के इस नये दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। "साध्य-साधना तत्त्व" में भक्ति के ५ भेद माने गये हैं:—

१ शांत (शांते श्रीकृष्णेनिष्ठुर बुद्धिता। १) चैतन्य चरित्रामृत में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—कृष्ण निष्ठा बुद्धि एहे शान्तेर लक्षण।

शांत में भक्त ईश्वर में कठोर, निर्मम, ऐश्वर्यवान् सौन्दय की कल्पना करता है और उसकी शरण में जाता है। जब भक्त इस रस को प्राप्त कर लेता है तो उसके सांसारिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं, उसकी निष्ठा एक मात्र भगवान में लवलीन हो जाती है।

उसमें किसी भी अनुभाव (अश्रु) कंप, पुलकादि के दर्शन नहीं होते। (शांते निर्ममता योग निर्वेद—अश्रु पुलक रोमांचादि वर्जित)

२ दास्य (दास्य सेवा)

अनुभाव आदि की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया गया है। रूप-सनातन ने ही पहली बार गौड़ीय भक्ति का रूप स्थिर किया और वैयक्तिक रामानुगा भक्ति को शास्त्रीय रूप देने की चेष्टा की।

दास्य में भक्त भगवान को अपनी सेवाएं अर्पित करता है।

३ सख्य (सख्य निःसंभ्रमता)

सख्य में स्वामी-सेवक के बीच में जो अंतर है वह भी दूर हो जाता है, ईश्वर सखा और मित्र बन जाता है।

४ वात्सल्य (वात्सल्य स्नेह)

इस रस में भगवान के प्रति स्नेह और सरल भाव का अधिक विनाश हो जाता है।

५—उज्ज्वल वा मधुर रस (उज्ज्वेल स्वांग सगे दानेव सुखोत्पादनम्)

माधुर्य में भक्त भगवान को अपनी सारी इन्द्रियों का समर्पण कर देता है वह चाहे उससे जैसा व्यवहार करे।

उन सब भेदों के अनेक सूक्ष्म प्रभेद किये गये हैं। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गौणीय शास्त्रकारों ने उपासक की सूक्ष्मतम अंतर्वृत्तियों के समझने की चेष्टा की थी। दास्य को ही लीजिये। दास्य के ४ मुख्य भेद हैं—अधिकृत भक्त, आश्रित भक्त, पार्श्वद भक्त, अनुगा भक्त। इनमें के प्रत्येक के कई भेद हैं। उदाहरण के लिए अधिकृत भक्त के भेद हैं शरण्य, ज्ञानिचरा, सेवानिष्ठ।

गौड़ीय वैष्णवों ने चैतन्य को ही कृष्ण-राधा मान लिया। कृष्ण के विरह में रत चैतन्य राधा हैं, जब वे महाभाव दशा (तन्मयता) को प्राप्त होते हैं तो कृष्ण हैं। उनको लेकर रस आदि की विशद चर्चा हुई। गोपियाँ भगवान की ही शक्तियाँ हैं जिनसे वह अपने सौन्दर्य और प्रेम का आनन्द प्राप्त करता है; जितने भाव हैं, उतनी ही गोपियाँ हैं इस प्रकार गोपियाँ असंख्य हैं।

बंगाल के वैष्णवों की एक विशेषता उनकी "परकीया" भावना की उपासना है। चैतन्य ने स्वय "परकीया" को स्वीकार किया है परन्तु वे अपने समय के कलुषित वातावरण से परिचित थे, अतः उन्होंने उसको भावना तक ही सीमित रखा। सहजियों की तरह वे परकीया भावना की शिक्षा के लिए पर स्त्री-रमण को ग्राह्य नहीं समझते थे। उनका मत कुछ ऐसा था—

प्रेम प्रेम बले लोके प्रेम जाने किवा
प्रेम करा नाहि इ रमनीर सेवा
अभेद पुरुष नारी यखन जानिवे
तखन प्रमेरे तत्व हृदये उदिवे

(गोविन्द दास)